कैनेडा से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका

वसुधा

Year 17, Issue 65
Jan.-March, 2020

VASUDHA A CANADIAN PUBLICATION

EDITOR-PUBLISHER : Dr. Sneh Thakore - Awarded By The President Of India
Limka Book Record Holder

सम्पादन व प्रकाशन
डॉ. स्नेह ठाकुर
भारत के राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत
लिम्का बुक रिकॉर्ड होल्डर

वर्ष १७ - अंक ६५, जनवरी - मार्च २०२०

विश्वासों की काँवर

पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि

चाँद नहीं आयेगा शायद
चलो रात का घूँघट खोलें.

नया अर्थ मिले फिर स्वप्न को
बदलें ऐसी परम्पराएँ;
मन के उदासीन आँगन में
साहस की हों रोज़ सभाएँ.

सन्नाटा एकाकी लगता
चलो संग उसके हम हो लें.

अँधियारे को सहज दिखा दें
हम अपनी आँखों का दर्पण;
काँटों को बस अभी सिखा दें
कुटिल अहम् का मधुर विसर्जन.

दर्द आज पाहुन बन आया
चलो, पास बैठें, हम बोलें.

अपने कन्धों पर हम धर लें
वज़नी विश्वासों की काँवर;
हम विपदा के संग घूम लें
हँसते-हँसते सातों भाँवर.

जीवन को आसान बनाएँ
कुंठाओं के फोड़ फफोले.

वसुधा

सम्पादन व प्रकाशन : डॉ. स्नेह ठाकुर

(पोस्ट-डॉक्टरल फ़ेलोशिप अवार्डी)

(भारत के राष्ट्रपति द्वारा राष्ट्रपति भवन में "हिन्दी सेवी सम्मान" से सम्मानित)

शीर्षक	रचयिता	पृष्ठ
सम्पादकीय		२
स्वाधीनता	स्वामी विवेकानन्द	४
धरती ख़ामोश थी	संजय श्रीवास्तव	६
समकालीन जीवन और महात्मा गाँधी	प्रो. गिरीश्वर मिश्र	७
एक और सच	शैल अग्रवाल	९
हा! ये क्या हुआ	अरुण तिवारी	१५
प्राचीन भारत में राष्ट्रवाद	डॉ. रवीश कुमार	१८
असमान बनने की स्वतंत्रता	ओशो	२५
औरत	भावना सक्सैना	२६
शान्ति और प्रकाश की तलाश	डॉ. अनिल विद्यालंकार	२९
ओम टॉपरॉय नम:	दिलीप कुमार सिंह	३३
हिन्दी को अब राष्ट्रभाषा होना ही है	प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी	३६
शब्दों की सत्ता अनमोल	राजेश बादल	४३
विश्वासों की काँवर	पद्मश्री डॉ. श्याम सिंह शशि	१अ
डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार		४४अ

रचनाओं में निहित विचार तथा मन्तव्य रचनाकारों के निजी विचार तथा मन्तव्य हैं। 'वसुधा' रचनाकारों के विचारों के लिए उत्तरदायी नहीं है। प्रकाशक की आज्ञा बिना कोई रचना किसी प्रकार उद्धृत नहीं की जानी चाहिए। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा।

रचनाएँ भेजने के लिए सम्पर्क पता :

16 Revlis Crescent, Toronto, Ontario M1V-1E9, Canada. TEL. 416-291-9534

वार्षिक शुल्क Annual subscription.....$25.00, भारत - रु. ६००.००

डाक द्वारा By Mail $35.00, International Mail $40.00

Website: http://www.Vasudha1.webs.com, kavitakosh.org/vasudhapatrika

e-mail: dr.snehthakore@gmail.com

सम्पादकीय

भारत के प्रधानमंत्री माननीय श्री नरेन्द्र मोदी जी ने अपने वक्तव्य में कहा था – "हम देशवासियों के पास नए भारत के लिए जनादेश लेने के लिए गए थे. आज हम देख रहे हैं कि देश के कोटि-कोटि नागरिकों ने इस फ़कीर की झोली भर दी. अगर कोई विजय हुआ है तो हिन्दुस्तान विजयी हुआ है. अगर कोई विजयी हुआ है तो लोकतंत्र विजयी हुआ है, जनता-जनार्दन विजयी हुई है."

२०१९ हिन्दी दिवस पर भारत के केन्द्रीय गृहमंत्री माननीय श्री अमित शाह बोले कि पूरे देश के लिए एक भाषा होनी चाहिए. देश को एक जुट करने का काम अगर कोई भाषा कर सकती है तो वह हिन्दी है. उनके शब्दों में – "भारत विभिन्न भाषाओँ का देश है और हर भाषा का अपना महत्त्व है परन्तु पूरे देश की एक भाषा होना अत्यंत आवश्यक है जो विश्व में भारत की पहचान बने. आज देश को एकता की डोर में बाँधने का काम अगर कोई एक भाषा कर सकती है तो वो सर्वाधिक बोली जाने वाली हिन्दी भाषा ही है. आज हिन्दी दिवस के अवसर पर मैं देश के सभी नागरिकों से अपील करता हूँ कि हम अपनी-अपनी मातृभाषा के प्रयोग को बढ़ाएँ और साथ में हिन्दी भाषा का भी प्रयोग कर देश की एक भाषा के पूज्य बापू और लौह पुरुष सरदार पटेल के स्वप्न को साकार करने में योगदान दें."

इसी हिन्दी दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी जी ने भी इसकी अहमियत देश को बताई. उन्होंने ट्वीट में लिखा, "हिन्दी दिवस पर आप सभी को बहुत-बहुत बधाई. भाषा की सरलता, सहजता और शालीनता अभिव्यक्ति को सार्थकता प्रदान करती है. हिन्दी ने इन पहलुओं को खूबसूरती से समाहित किया है."

हिन्दी के प्रति ये उद्गार हिन्दी के उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करते हैं. भाषा तो बहता नीर है, उसकी निरंतरता बनाये रखने के लिए उससे जुड़ाव अत्यंत आवश्यक है. पानी में ठहराव सड़ांध उत्पन्न करता है. अत: किसी भी प्रकार का अवरोध समाप्त कर, उसे सम्पन्नता प्रदान कर, भाषा के प्रवाह को सतत् निरंतरता प्रदान करना एक शुभ संकेत है.

साहित्यकार एवं प्रकाशक श्री उमेश मेहता के सौजन्य से भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ ने हिन्दी कार्यशाला का सफलतम आयोजन किया जिसमें मुझे मुख्य अतिथि का सौभाग्य प्रदान किया गया. कार्यशाला ने बहुत ही प्रभावित किया. माननीय श्री उमेश मेहता, भा.रा.सह.संघ के अध्यक्ष राज्य सभा सांसद डॉ. चंद्रपाल सिंह यादव, मुख्य कार्यकारी श्री एन.सत्यनारायण, श्रीमती मोनिका खन्ना, श्री लक्ष्मा रेड्डी, डॉ. वी.के. दूबे, डॉ. के.एन. सिन्हा, समस्त प्रतिभागी एवं इस आयोजन से सम्बंधित अन्य सभी को मेरा साधुवाद, नमन तथा आभार.

हिन्दी सेंटर व मौडलिन्गुआ के संयोजक श्री रवि कुमार ने स्पैनिश दूतावास के प्रोग्राम में अनुवादकों की भूमिका पर एक अत्यंत प्रभावशाली कार्यशाला का आयोजन किया. अनेकों सामयिक दृष्टान्तों के साथ दिए गए उनके इस महत्वपूर्ण शिक्षाप्रद वक्तव्य का तालियों की गूँज से समापन हुआ. हिन्दी सेंटर की संरक्षिका रूप में उपस्थित हो गर्वित होने का एहसास बड़ा सुखद था. यहीं पर स्पैनिश कल्चर सेंटर के निदेशक डॉ. ओस्कार पुजैल जी जो संस्कृत और हिन्दी के विख्यात विद्वान् हैं, से भी मिलने का शुभ अवसर प्राप्त हुआ और सोने पे सुहागा यहीं पर मुख्य अतिथि टोराण्टो के पूर्व कोंसुलाध्यक्ष जो आजकल आई.सी.सी.आर. में निदेशक पदासीन हैं, जिन्होंने स्नेह को सदा ही स्नेह-सिंचित किया है, से भी एक अंतराल के बाद पुन: मिलन का सौभाग्य प्राप्त हुआ. सम्पूर्ण प्रकरण हेतु रवि कुमार जी का धन्यवाद एवं आभार.

श्री न्यूटन मिश्रा जी के सौजन्य से "संस्कार भारती" संस्था जो भारतीय सभ्यता, संस्कृति से जुड़े तथ्यों का शोध और संरक्षण कर उसके उन्नयन हेतु संलग्न है, के महासचिव माननीय श्री अमीर चंद जी से भेंट-वार्ता का सुअवसर प्राप्त हुआ. जहाँ अमीर चंद जी के साहित्य, संस्कृति ज्ञान से प्रभावित हुई वहीं उनके व्यक्तित्व की सहजता, सौम्यता, सदाशयता ने भी अत्यंत प्रभावित किया. प्रासंगिक विषयों पर विस्तार से चर्चा हुई. उनके अमूल्य समय हेतु धन्यवाद एवं आभार.

आई.सी.सी.आर. के अध्यक्ष माननीय डॉ. विनय सहस्त्रबुद्धे जी से साहित्य, हिन्दी के विकास आदि अनेक विषयों पर सारगर्भित चर्चा हुई. ऐसे गम्भीर चिंतन हेतु उन्होंने अपना अमूल्य समय दे मार्गदर्शन किया, हार्दिक आभार.

मेरे सभी शुभ-चिंतकों के लिए हर्ष का विषय है कि साहित्य अकादेमी (राष्ट्रीय साहित्य संस्थान) रवीन्द्र भवन, नई दिल्ली के पुस्तकालय ने मेरे दो उपन्यास "लोक-नायक राम" एवं "दशानन रावण" को स्थान प्रदान किया है.

इस समय एक ओर आतंकवाद ने मानव को त्रस्त किया है, दूसरी ओर नारी सामाजिक अभिशाप, बलात्कार, घरेलू हिंसा आदि अन्याय की स्थितियों से जूझ रही है. ऐसी परिस्थिति में हमें विश्व स्तर पर नारी सशक्तिकरण की विशेष आवश्यकता है जिसके लिए डायसपोरा तथा भारतीय महिलाओं को संगठित होकर सशक्त होना आवश्यक है.

प्रसन्नता का विषय है कि रिसर्च फाउंडेशन इंटरनेशनल द्वारा नारी सशक्तिकरण प्रकल्प का हाल ही में गठन किया गया है. इस विषय से सम्बंधित संगोष्ठियाँ, सेमिनार व वर्कशॉप आदि देश-विदेश में किए जाएँगे.

उक्त गतिविधियों के समाचार उपलब्ध साधनों के आधार पर वसुधा त्रैमासिक में समय-समय पर प्रकाशित किये जाएँगे. यह पत्रिका वैश्विक साहित्य की एक प्रमुख पत्रिका के रूप में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् का सन्देश जन-जन तक सम्प्रेषित करेगी. नव वर्ष सभी प्राणियों में सद्भाव उत्पन्न कर उनका जीवन मंगलमय बनाए, इसी कामना को मन-प्राण में सँजोए -

"मन मेरा दीप नैवेद्य का
आत्मा का घृत डाला
निज-स्नेह-सिक्त उर-वर्तिका
आराध्य के प्रांगण में चला
जलने विहँसता
छिप गई दिन की उजियाली
सुनहली साँझ आई
रजनी ओढ़े आती
झिलमिल तारों की जाली
कितने युगल-चरण से चिह्नित
अलिन्द की भूमि
प्रणत शिरों से रंजित देहरी
झरे सुमन अक्षत प्रतिमा पर
धूप, अर्घ्य, नैवेद्य अपरिमित
शंख, घड़ियाल, वंशी, वीणा स्वर
शत-शत लय से गुंजित
सुमधुर कंठों का मेला
आरती की बेला
जब रह जायेगा मंदिर में ईष्ट अकेला
तम में होगा अन्तर्हित यह मेला
तब भी कहेगी मेरी नीरव दीपशिखा
अपनी सबकी अर्चित कथा
घृत की अंतिम बूँद पर
बुझने को जब आये आभा
मिट जाये प्रिय में ऐसे
तप्त रेत में सलिल कण जैसे
मन मेरा दीप नैवेद्य का

सस्नेह, स्नेह ठाकुर

स्वाधीनता

(स्वामी जी की जन्म-तिथि पर विशेष – संपादक)

स्वामी विवेकानंद

जिस प्रकार भी हो, हमें संघ को दृढ़प्रतिष्ठ और उन्नत बनाना होगा और इसमें हमें सफलता मिलेगी - अवश्य मिलेगी। 'नहीं' कहने से नहीं बनेगा! और किसी बात की आवशयकता नहीं - आवश्यकता है केवल प्रेम, अकपटता और धैर्य की। जीवन का अर्थ है वृद्धि, अर्थात् विस्तार, और विस्तार ही प्रेम है। इसलिए प्रेम ही जीवन है - वही जीवन का एकमात्र गति-नियामक है। और स्वार्थपरता ही मृत्यु है। इहलोक और परलोक में यही बात सत्य है। यदि कोई कहे कि देह के विनाश के बाद और कुछ नहीं रहता, तो भी उसे यह मानना पड़ेगा कि स्वार्थपरता ही यथार्थ मृत्यु है।

परोपकार ही जीवन है, परोपकार न करना ही मृत्यु है। जितने नर-पशु तुम देखते हो, उनमें नब्बे प्रतिशत मृत हैं - प्रेत हैं, क्योंकि जिसमें प्रेम नहीं है, वह मृत नहीं तो और क्या है? ये युवकों, सबके लिए तुम्हारे हृदय में दर्द हो - गरीब, मूर्ख और पददलितों के दु:ख को हृदय से अनुभव करो, सम्वेदना से तुम्हारे हृदय की क्रिया रुक जाये, मस्तिष्क चकराने लगे, तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि हम पागल तो नहीं हो गये हैं। तब जाकर ईश्वर के चरणों में अपने हृदय की व्यथा प्रकट करो। तभी उनके पास से शक्ति, सहायता और अदम्य उत्साह आयेगा। जब चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दिखता था, तब भी मैं कहा कहता था - प्रयत्न करते रहो; और आज जब थोड़ा-थोड़ा उजाला दिख रहा है, तब भी मैं कहता हूँ कि प्रयत्न करते जाओ। वत्स, डरो मत। ऊपर उस अनन्त नक्षत्र-खचित आकाश की ओर इस तरह भयभीत हो मत ताको, मानो वह तुम्हें कुचल डालेगा।

धीरज धरो, देखोगे, कुछ ही समय बाद वह सब-का-सब तुम्हारे पैरों-तले आ जायेगा। धीरज धरो! न धन से काम होता है, न नाम से; न यश काम आता है, न विद्या। प्रेम ही से सब कुछ होता है; चरित्र ही कठिनाइयों की संगीन दीवारें तोड़कर अपना रास्ता बना लेता है।

अभी हमारे सामने यह समस्या है। बिना स्वाधीनता के किसी प्रकार की उन्नति सम्भव नहीं। हमारे पूर्वजों ने धर्म-चिन्ता के क्षेत्र में स्वाधीनता दी थी और उसी के फलस्वरूप हमारा यह अपूर्व धर्म खड़ा है। पर उन्होंने समाज के पैर बड़ी-बड़ी जंजीरों से जकड़ दिये, जिसके परिणामस्वरूप हमारा समाज, दो शब्दों में, भयंकर और पैशाचिक हो गया है। पाश्चात्य देशों में समाज को सदैव स्वाधीनता मिलती रही, उनके समाज को देखो और फिर दूसरी ओर उनका धर्म कैसा है, वह भी देखो।

उन्नति की पहली शर्त है - स्वाधीनता। मनुष्य को जिस प्रकार विचार और वाणी में स्वाधीनता मिलनी चाहिए, वैसे ही उसे खान-पान, रहन-सहन, विवाह आदि हर एक बात में स्वाधीनता मिलनी चाहिए - जब तक कि उसके द्वारा दूसरों को कोई हानि नहीं पहुँचती।

हम मूर्खों की तरह भौतिक सभ्यता की निन्दा किया करते हैं। और क्यों न करें, अंगूर खट्टे जो हैं! भारत की आध्यात्मिक सभ्यता की श्रेष्ठता को स्वीकार करने पर भी यह मानना ही पड़ेगा कि सारे भारतवर्ष में एक लाख से अधिक यथार्थ धार्मिक नर-नारी नहीं हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या इन मुट्ठीभर लोगों की धार्मिक उन्नति के लिये भारत के तीस करोड़ अधिवासियों को बर्बरों का सा जीवन व्यतीत करना और भूखों मरना होगा? क्यों एक भी आदमी भूखों मरे? भारत को उठाना होगा, गरीबों को दो रोटी देनी होगी, शिक्षा का विस्तार करना होगा और पुरोहिती की बुराइयों को ऐसा धक्का देना होगा कि वे चक्कर खाती हुई एकदम अतलान्तिक महासागर में जा गिरें! ब्राह्मण हो या संन्यासी - किसी की बुराई को क्षमा न मिलनी चाहिए। ऐसा करना होगा, जिससे

पुरोहिती की बुराइयों और सामाजिक अत्याचारों का कहीं नाम-निशान तक न रहे, सबके लिए अन्न अधिक सुलभ हो जाये और सबको अधिकाधिक सुविधा मिलती रहे।

स्वाधीनता पाने का अधिकार उसे नहीं, जो स्वयं औरों को स्वाधीनता देने को तैयार न हो। मान लो, अँग्रेजों ने सब अधिकार तुम्हारे हाथों में सौंप दिये। तो होगा क्या? तब तो तुम प्रजा को दबाओगे और उन्हें कुछ भी अधिकार न दोगे। गुलाम तो शक्ति चाहता है दूसरों को गुलाम बनाने के लिए।

इसीलिए अब केवल अपने धर्म पर जोर देकर तथा समाज को स्वतंत्रता देकर इस कार्य को धीरे-धीरे सिद्ध करना है। पुराने धर्म से पुरोहिती छल को उखाड़ फेंको, और इससे तुम्हें संसार में सर्वोत्तम धर्म प्राप्त हो जायेगा। समझ गये न मेरी बात? भारतीय धर्म के आधार पर क्या तुम यूरोप जैसा समाज बना सकते हो? मुझे विश्वास है कि यह सम्भव है, और होना भी चाहिए।

उत्साह से हृदय भर लो और सब जगह फैल जाओ। काम करो, काम करो। नेतृत्व करते समय सबके दास हो जाओ, नि:स्वार्थ होओ और कभी एक मित्र को, पीठ पीछे दूसरे मित्र की निन्दा करते मत सुनो। सब संगठनों का सत्यानाश इसी से होता है। अनन्त धैर्य रखो, तभी सफलता तुम्हारे हाथ आयेगी। काम करो; काम करो; दूसरों के हित के लिये काम करना ही जीवन का लक्षण है।

हममें किसी प्रकार की कपटता, कोई दुरंगी चाल, कोई दुष्टता न रहे। मैं सदैव प्रभु पर निर्भर रहा हूँ - सत्य पर निर्भर रहा हूँ, जो दिन के प्रकाश की भाँति उज्ज्वल है। मरते समय मेरी विवेक-बुद्धि पर यह धब्बा न रहे कि मैंने नाम या यश पाने के लिये, यहाँ तक कि परोपकार करने के लिए दुरंगी चालों से काम लिया था। दुराचार की गन्ध या बदनीयती का नाम तक न रहने पाये।

किसी प्रकार का टालमटोल या छिपे तौर बदमाशी या गुप्त शठता हम में न रहे - पर्दे की आड़ में कुछ न किया जाये। गुरु का विशेष कृपापात्र होने का कोई भी दावा न करे। यहाँ तक कि हममें कोई गुरु भी न रहे। मेरे साहसी बच्चो, आगे बढ़ो - चाहे धन आये या न आये; आदमी मिलें या न मिलें; क्या तुम्हारे पास प्रेम है? क्या तुम्हें ईश्वर पर भरोसा है? बस, आगे बढ़ो, तुम्हें कोई न रोक सकेगा।

सतर्क रहो! जो कुछ असत्य है, उसे पास तक न फटकने दो। सत्य पर डटे रहो, बस तभी हम सफल होंगे। इसमें चाहे थोड़ा अधिक समय लगे, पर तो भी निस्सन्देह हम अपने इस कार्य में सफल होंगे – अवश्य होंगे। इस तरह काम करते जाओ मानो मैं कभी था ही नहीं। इस तरह काम करो मानो तुमसे से हर एक के ऊपर सारा काम निर्भर है। भविष्य की पचास सदियाँ तुम्हारी ओर ताक रही हैं - भारत का भविष्य तुम पर निर्भर है! काम करते जाओ। भारत में लोग अधिक-से-अधिक मेरी प्रशंसा भर कर सकते हैं - पर वे किसी काम के लिये एक पैसा भी न देंगे। और दें भी तो कहाँ से? वे स्वयं भिखारी हैं न? फिर गत दो हजार या उससे भी अधिक वर्षों से वे परोपकार करने की बुद्धि ही खो बैठे हैं। 'देश', 'जनसाधारण' इत्यादि के भाव वे अभी-अभी सीख रहे हैं। इसलिए मुझे उनकी कोई शिकायत नहीं करनी है।

धरती खामोश थी

संजय श्रीवास्तव

धरती खामोश थी,
जब तुम पेड़ काट रहे थे
वो तब भी खामोश थी
जब तुम उसे चीरकर
पानी निकाल रहे थे,
वो अब भी खामोश है
तुम्हे विलाप करते देखकर
चिल्लाओ गला फाड़कर
देखो जरा आँखे निकालकर
किस तरह उर्वर धरती
को बंजर तुमने बनाया
आज उसने एक कतरा
के लिए तुमको तरसाया
हे स्वार्थी !
अब तो सँभल जाओ
अपने कृत्य को न दोहराओ
वरना इससे भी भयंकर
दास्तान होगा !
धरती का रुप
शायद रेगिस्तान होगा !
पानी का मोल
तू समझ तो जायेगा,
बिडम्बना ये है
किसी कीमत पर भी
पानी नही पायेगा।

समकालीन जीवन और महात्मा गाँधी

प्रो. गिरीश्वर मिश्र

(पूर्व कुलपति महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय)

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का जीवन महाकाव्य के एक ऐसे नायक का चरित-सा है जो समग्र भारतीय जीवन के लिए एक दृष्टि उपलब्ध कराता है परंतु जिसके सोच-विचार की पृष्ठभूमि में सारी मनुष्य जाति और मानवता की चिंता व्याप्त है । उन्होंने परदेसी राजा और शोषण करने वाली औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के बीच गरीब और टूटे-बिखरे भारत के समाज के कड़वे सच की नब्ज पकड़ी । अपने अध्ययन और उससे भी ज्यादा भारत और विदेश के निजी अनुभवों से गुजरते हुए उन्होंने व्यापक धरातल पर तत्कालीन सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों पर गहन विचार के साथ-साथ उससे जुड़ने तथा बदलने की कार्य-योजना बनाई और उस पर अमल किया । उन्होंने समस्त मानवता और मानव जीवन के मद्दे नजर एक वैश्विक अध्यात्म की समझ विकसित की । उनके समर्पित सामाजिक जीवन की घटनाएँ देखने पर यही लगता है कि उनके सोच-विचार और कर्म ऐसे ही अध्यात्म-भाव से अनुप्राणित हैं । 'सत्य ही ईश्वर है' यह खोज और उसे स्वीकार कर उसकी राह पर चलना अदम्य साहस का परिचायक है। वे कहते हैं कि 'यह सत्य रूप परमेश्वर मेरे लिए रत्न चिंतामणि सिद्ध हुआ है ।' इसकी पूर्ति में ही वे अनावश्यक दिखावा और आडम्बर त्याग कर वे शरीर, मन और आत्मा तीनों के लिए जरूरी खुराक जुटाते रहे। अस्तेय, अहिंसा और अपरिग्रह के व्रत गाँधी जी के दैनिक जीवन के स्वाभाविक अंग बन गए थे। इन सबका आधार सत्य ही है।

सर्वोदय, स्वराज, अहिंसा, ग्रामोदय, सत्याग्रह और हरिजन जैसे कर्मनिष्ठ विचारों को ले कर गाँधी जी ने समाज के लिए व्यावहारिक स्तर पर जो ताना-बाना बुना वह निश्चित रूप से एक सर्व-समावेशी दृष्टि पर टिका था। यद्यपि वे सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक मोर्चों पर किस्म-किस्म के काम कर रहे थे 'सर्वोदय' का विचार और नैतिक–आध्यात्मिक आधार ही उनकी कसौटी बना रहा। सर्वोदय सच्चा लोकतन्त्र है जो विशुद्ध नैतिक शक्ति पर आधृत जनता का प्रभुसत्ता सम्पन्न राज्य । इन्हीं को लेकर वे अपनी नीतियों की उपयुक्तता को जाँचते-परखते थे। सबका भला और भलाई के लिए त्याग के लिए तैयार रहना उनके स्वभाव का अभिन्न अंग हो गया था। गाँधी जी के चिंतन-फ़लक पर एक समतामूलक समाज और सबकी मूलभूत जरूरतों की पूर्ति की चिंता हमेशा छाई रहती थी। 'स्वदेशी' का स्वागत भी उन्होंने इसी दृष्टि से किया। वे चाहते थे कि अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का उत्पादन अपने देश में ही हो और उन्हीं का वितरण और उपभोग होना चाहिए। उनके रचनात्मक कार्यों में कुटीर उद्योग और हस्तकला पर अत्यधिक ज़ोर भी शायद इसीलिए था कि अधिकांश जनों को रोजगार मिल सके, उनकी आय बढ़े और उनमें स्वावलम्बन आ सके । समाज के दीन-हीन अंतिम जन के जीवन स्तर में सुधार के लिए वे समर्पित रहे।

गाँधी जी ने अपने आरम्भिक विचारों को दक्षिण अफ्रीका में प्रवास के दौरान अपनी सामाजिक प्रयोगशाला में परखा, आजमाया था और भारत में तो उनका पूरा जीवन ही स्वराज पाने के लिए सामाजिक परिस्थितियों के बीच चल रहे तरह-तरह के प्रयोगों से भरा पड़ा था। उनका पूरा जीवन उभरते सामाजिक यथार्थ को पकड़ने, उसमें शामिल होने और उसे रचने की जद्दोजहद से भरा पड़ा था। दक्षिण अफ्रीका में पचीस साल के युवा गाँधी ने प्रवासी भारतीयों के हितों की रक्षा तथा रंग-भेद की नीति के विरुद्ध कार्य करने के लिए एक संगठन की स्थापना की और उसी के साथ जो सामाजिक जीवन की यात्रा शुरू हुई वह अंतिम क्षण तक जीवनपर्यंत अविराम चलती रही। इसमें 'निजी' और 'सार्वजनिक' के बीच का भेद खोता चला गया। उतार-चढ़ाव भरी इस अनथक यात्रा में क्या कुछ नहीं था। जेल जाने से लेकर सत्याग्रह, उपवास, आंदोलन, मार्च

निकालना, संस्थाओं का निर्माण, पत्रकारिता, नेतृत्व, शिक्षा का प्रयोग, आश्रमों का निर्माण, अध्ययन, लेखन और पत्राचार करते हुए गाँधी जी ने एक कर्मठ साधक का जीवन जिया। यह असाधारण कर्तृत्व सहज न था। इसके लिए बड़े कड़े आत्मानुशासन से उन्होंने अपने को साधा था।

अपने इस कार्य में लक्ष्यों से ज्यादा साधन की शुचिता उनके लिए बड़े महत्व की थी और निरंतर इसका आग्रह करते रहे। उन्होंने हर तरह की हिंसा का विरोध किया। उनके मन में व्यक्ति-स्वातंत्र्य के लिए भरपूर आदर था परंतु पूरे समाज के कल्याण की आकांक्षा ही सर्वोपरि थी। सभी समुदायों को साथ लेकर चलना, अस्पृश्यता से लड़ना, भाई-चारा स्थापित करने के लिए काम करना और सार्वभौम जीवन की अवधारणा को आगे बढ़ाना गाँधी जी के मानवीय पक्ष को व्यक्त करते हैं जो स्वराज और सर्वोदय की उनकी यात्रा में पाथेय जैसे थे। कृषि को सामुदायिक सम्पत्ति स्वीकार करते हुए व्यक्ति को ट्रस्टी मान कर सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था की संकल्पना की थी। राजनैतिक स्वातंत्र्य के साथ रचनात्मक कार्य को भी जोड़ा जिसमें शिक्षा एक महत्वपूर्ण पक्ष था।

वस्तुतः गाँधी जी ने मानुषी स्वभाव के अपने स्वप्न को साकार करने लिए शिक्षा की एक सर्वांगपूर्ण संकल्पना प्रस्तुत की थी । वह बुद्धि के विकास के लिए आत्मा और शरीर के विकास को आवश्यक मानते थे। इसके लिए वह साक्षरता की जगह हस्तकला के साथ शिक्षारम्भ करने पर बल देते थे। सहकारी क्रिया-कलाप, सामुदायिक जीवन और वयस्क लोगों की सामाजिक सेवा का अवसर भी दिया जाना चाहिए। सेवा और त्याग में ही शिक्षा की चरितार्थता सिद्ध होती है। चरित्र को दृढ़ बनाना भी शिक्षा के आयोजन का मुख्य भाग है। उनके अनुसार चाल-चलन या सदाचरण शिक्षा की बुनियाद है । 'यदि बुनियाद पक्की होगी तो और सब कुछ बच्चे अवसर पर दूसरों की सहायता से या अपने आप सीख लेंगे।' गाँधी जी पैसा कमाने की जगह 'अच्छा व्यक्ति बनाना देश सेवा करना' मानते थे। हम सच्चे अर्थों में मनुष्य बनें यह पहली शिक्षा है। वे पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के अंधानुकरण के विरुद्ध थे और मानते थे कि इससे भारत का उत्थान सम्भव नहीं है। उन्होंने विदेशी भाषा अँग्रेजी माध्यम से शिक्षा के बौद्धिक और नैतिक आघात को देख कर मातृभाषा के उपयोग का समर्थन किया है। उनके द्वारा प्रस्तावित नई तालीम स्वावलम्बन पर बल देती है । बुनियादी शिक्षा को वह अपनी सर्वश्रेष्ठ भेंट मानते हैं। वह कहते हैं कि 'जिस दुनिया के लिए मैं छटपटा रहा हूँ वह इसमें से उत्पन्न की जा सकती है। यह मेरी आखिरी वसीयत है।' 'मनुष्य न तो कोरी बुद्धि है, न स्थूल शरीर और न केवल हृदय या आत्मा ही है। सम्पूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिए तीनों के उचित और एकरस मेल की आवश्यकता होती है । वही शिक्षा की सच्ची व्यवस्था है।' आज की शिक्षा नीति के लिए नई तालीम में बहुत कुछ अनुकरणीय है।

देश को स्वतंत्रता तो मिली, विदेशी सत्ता से छुटकारा भी मिला परंतु रचनात्मकता पर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया गया। स्वावलम्बन और राष्ट्र निर्माण का काम पिछड़ गया। निःस्वार्थ जन सेवा और चरित्र दुर्लभ होता गया। हमारी राजनैतिक दृष्टि विभक्त चेतना वाली और दुविधाग्रस्त थी। हम महात्मा गाँधी का समाजवाद भी चाहते रहे और विदेशी रास्ता भी अपनाते रहे । महात्मा गाँधी देश-प्रेम और मानव-प्रेम के बीच कोई अंतर नहीं करते थे। वे कहते थे कि 'मैं भारत का उत्थान इसलिए चाहता हूँ कि सारी दुनिया उससे लाभ उठा सके । मैं यह नहीं चाहता कि भारत का उत्थान दूसरे देशों कि नींव पर हो।' वह स्वराज्य के द्वारा सारे विश्व की सेवा करने का स्वप्न देखते थे। आज पर्यावरण विनाश, चरित्र की गिरावट और हिंसा की विश्वव्यापी चुनौती हमें सोचने को बाध्य कर रही है कि हम शरीर, बुद्धि और आत्मा के संतुलित विकास पर विचार करें। आज तेज रोशनी में चौंधियाई आखों से जब सब धुँधला नजर आ रहा है महात्मा गाँधी का आलोक एक विकल्प प्रस्तुत करता है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

एक और सच

शैल अग्रवाल

सामने औंधे मुँह पड़ी वह औरत बस हड्डियों का ढाँचा मात्र थी जो जरा भी हिलाने-डुलाने क्या, छूने तक से टूट सकती थी। सूखे फूल-सी झर सकती थी। मुझे यह सब तभी समझ लेना चाहिए था जब सुबह-सुबह, सात बजे, बारबरा का फोन आया था - "हमारी मदद करो। यहाँ क्राइसिस सेंटर में एक हिन्दुस्तानी औरत है, जिसने हफ्ते भर से कुछ भी नहीं खाया-पिया। स्नान तक नहीं किया है। किसी से बात नहीं करती। पास तक नहीं आने देती। पुलिस जब से छोड़कर गई है, ऐसे ही चुपचाप, एक ही जगह पर गुमसुम बैठी है। हम सबको बहुत फिकर है इसकी। शायद अँग्रेजी न बोल पाती हो, शायद तुम्हारे आगे ही खुले और तुमसे ही कुछ मदद मिल जाए इसे? क्या पता तुम ही इसके लिए कुछ कर पाओ?"

देखते ही सब कुछ समझ में आ गया। बात बस हिन्दी या अँग्रेजी बोलने तक नहीं थी। सिर्फ कुछ सवाल और जबाव की नहीं थी। मुरदे में जान फूँकने जैसी, कठिन और दुर्लभ थी। कमरे की मरघटे वाली उदास गंध दूर से ही पहचानी जा सकती थी।

मैली-कुचैली वह औरत सो रही थी या जग रही थी, यह तो नहीं जान पाई, पर इतना निश्चित था कि उसने खुद को काट कर कब का दुनिया से अलग कर लिया था। उस बीमार-उदास भभके को झेलती मैं खुद भी वहीं जमीन पर, उसके पास ही बैठ गई। आकंठ डूबी इस औरत से क्या और कैसे कहूँ, समझ नहीं पा रही थी। उसे बचाने आई थी और अब उस कमरे में आकर खुद भी डूबने लगी थी। इतना अँधेरा कि चेहरा देखना तो दूर अपना हाथ तक नहीं देख पा रही थी। बैठे-बिठाए क्या मुसीबत मोल ले ली। खुद को धिक्कारती उठी और कमरे के परदे और खिड़की दोनों ही खोल दिए। ताजी हवा की जरूरत हम दोनों को ही थी।

थोड़ी ही देर में उन अस्त-व्यस्त कपड़ों के ढेर में थोड़ी-सी हलचल हुई और काँपते पैर सिकुड़कर सीने से सट गए। मैंने बिस्तर का कम्बल उठाकर उसे उढ़ा दिया। वह औरत शायद पूरी तरह से अचेत नहीं थी, क्योंकि कम्बल हलका-हलका, दबी-घुटी साँसों और सिसकियों से बीच-बीच में हिल रहा था, गहरी साँसें ले रहा था। हिम्मत करके हाथ उस कम्बल पर रख दिया। उसके दुख से बीमार शरीर को आहिस्ता-आहिस्ता सहलाने लगी, "इस तरह से मन दुखाने से क्या फायदा? तुम चाहो तो हमारी मदद ले सकती हो। अपनी परेशानी दूर कर सकती हो।"

कोई जबाब नहीं मिला। सिसकियाँ जरूर तेज हो गईं। शायद सहानुभूति के कान आदी नहीं थे या फिर थोड़ा और अपनापन माँग रहे थे, बालों में उँगलियाँ फेरते हुए मैने पूछा, "कहाँ से आई हो?"

"अबरगवानी से।" आवाज मानो गले से नहीं किसी अंधे कुँए से आ रही थी। हफ्ते भर मौन रहकर बोला जाए, या बस रोते ही रहा जाए। वह भी ग्लानि और खून के आँसू तो शायद ऐसी ही अस्फुट और फुसफुसी-सी आवाज़ ही निकलती है।

"मैं यहाँ, इस देश की नहीं, अपने देश की बात कर रही हूँ?" एक पतली सी सहायता की डोर मैंने उसकी तरफ फेंकने की कोशिश की।

पता नहीं भाषा का अपनापन था या वेशभूषा का, हम दोनों जुड़ रहे थे। उसने न सिर्फ आँखें खोल ली थीं वरन् आँसू भरी आँखों से मेरी तरफ देख भी रही थी ।

"क्या नाम है तुम्हारा?"

"कनकलता, हम भागलपुर, बिहार से हैं।"

अब वह मेरी बात न सिर्फ सुन रही थी अपितु थोड़ा-थोड़ा मुझे समझ भी रही थी। मेरे होठों पर भी अपनेपन की मुस्कान आ गई। माथे पर लगातार चमकती, गिरी बिन्दी का फीका सफेद निशान और पैरों में पड़े हुए बिछुए बता रहे थे कि सफल या असफल जैसी भी हो कनक की शादी हो चुकी थी और पति जिन्दा था।

"तुम्हारे पति का क्या नाम है?"

"हैरी प्रसाद।"

"हैरी प्रसाद!" मैंने शब्द हल्के आश्चर्य से दुहराए। वैसे तो हरि का हैरी और जयकिशन का जैक्सन बनना यहाँ आम बात थी।

तब पहली बार मुँह पर नयी-नवेलियों की लाली और झिझक के साथ उसने मुझे बताया कि उसके सास-ससुस ने वैसे नाम तो हरिप्रसाद ही रखा था पर जबसे यहाँ आया है, सबको हैरी ही बतलाता है। अब तो मरीज भी उसे डॉ. हैरी ही कहकर बुलाते हैं।

"मरीज..." मेरा आश्चर्य और कौतुहल दोनों ही बढ़ते जा रहे थे, "क्या करते हैं तुम्हारे पति?"

"जी.पी. हैं यहीं अबरगवानी में।"

"तुमने पहले क्यों नहीं बताया कि तुम डॉ. प्रसाद की पत्नी हो?" मैंने आश्चर्य के साथ पूछा। "डॉ. प्रसाद तो यहाँ के सफल मनोवैज्ञानिक माने जाते हैं। उनकी पत्नी यहाँ, इस हालत में?"

"पत्नी नहीं, बस ब्याहता ही कहो। पत्नी के सारे सुख तो अल्वा ले रही है।"

"यह अल्वा कौन है?" अब मेरा कौतुहल छुपाए नहीं छुप रहा था।

"उसकी दूसरी।"

"दूसरी क्यों? पत्नी क्यों नहीं?" मैंने बातचीत को कुरेदते हुए पूछा।

"इसलिए, क्योंकि विधि-विधान से शादी नहीं हुई। बस कागज पर दस्तखत करके घर में आ बैठी। न किसी ने कन्यादान किया, न किसी ने मंत्र पढे। आगे-पीछे कोई नहीं था। इसके ही अस्पताल में नर्स थी। वहीं संग काम करते-करते फाँस लिया होगा? मेरी मौसी ने तो सगाई के वक्त ही कहा था कि ये डॉ. बडे रसिया होते हैं, चौबीसों घंटे इनकी नर्सों से छेड़-छाड़ और हँसी मजाक चलती रहती है। पर पापा ने तुरंत ही बात काटी थी - हँसी-मजाक नहीं करें तो चौबीसों घंटे जीवन और मौत से कैसे खेल पाएँ बेचारे? वे तो इसके गुण गाते-गाते न थकते थे। डॉ. लड़का तो ढूँढे नहीं मिलता, जहाँ बैठ जाए रोटी कमा ले, जहाँ खड़ा हो जाए वहीं इज्जत पाए।

मेरी ही किस्मत खोटी थी जो यह ऐसा निकला। नहीं तो लोगों के तो खोटे सिक्के भी खूब चलते हैं। फिर कोई सभी डॉ. खराब ही थोड़े होते हैं। दुनिया में एक से एक शरीफ डॉ. भी हैं। इस अल्वा की भी थोड़ी बहुत गलती तो होगी ही? देखा होगा बड़े घर का लड़का है, बस आ चिपकी। बिना देखे, कि आगे पीछे कौन-कौन हैं, किसका घर तोड़ रही है? वैसे भी इन छोटी जात वालों में तो यह सब चलता रहता है। छोटी जात की ही है - तभी तो आँखों में शरम का एक भी बाल नहीं। एक दिन खुद ही बता रही थी कि इसके बाप-दादे बरसों पहले सड़क बनाने बंधुआ मजदूरों की तरह अफ्रीका गए थे। शायद यही था इसमें जो मुझमें नहीं और शायद यही था जो इसे पसंद भी आया!"

उन झुकी हुई आँखों का आक्रोश और दुख मेरे मन को छू रहा था, विचलित कर रहा था- "तुमने कोई भी विद्रोह नहीं किया। आवाज नहीं उठाई कि तुम्हारे रहते यह सब नहीं कर सकता वह?"

"पर मैं यहाँ होती, तभी तो आवाज उठाती। मैं तो वहाँ मोतीहारी में बैठी अपने राकेश को पाल रही थी। जरा सा बेटा समझदार हो जाए तो पति के पास जाऊँ, ऐसे रंग-बिरंगे सपने देख रही थी।" ब्लाउज के अन्दर से, कहीं सीने में छुपी, उसने एक सुन्दर और स्वस्थ सात-आठ साल के बच्चे की तस्वीर मेरे आश्चर्य से फैले हाथों पर रख दी।

"जब मेरे भाइयों को पता चला तो वहाँ गाँव में तो लठ्ठ चल गए। सुनते हैं पाँच महीने की गाभिन भी थी यह तभी शादी के समय। पता नहीं प्यार करता था या इसी दबाब में शादी कर ली। बाद में वह बच्चा भी खराब हो गया। आज तक वैसी की वैसी ही है। दूसरे का घर फूँककर भला कौन सुखी रह पाया है? बस मेरी छाती पर मूँग दलने के लिए, मेरे घर में घुस आई। मेरे ही दूध पीते बेटे से बाप छीन लिया। पर किसे दोष दूँ? कोई सी भी जाँघ उघाड़ूँ, नंगी तो बस मैं ही होती हूँ।"

अगले हफ्ते ही मेरे ससुरजी मुझे यहाँ इसके पास छोड़ गए थे। इस धमकी के साथ कि देवताओं को हाजिर-नाजिर मानकर हाथ पकड़ा है, माँग भरी है। अब जीते-जी निभाना तो पड़ेगा ही। मैं अभागिन भी इस अनकही शर्त पर सब हार बैठी, बेटे की खातिर इनकी चाकरी में जुट गई, बस रोटी और एक कोठरी की तनख्वाह पर। नौकरानी, मेहतरानी, सब बन गई। ये भी खुश थे और मैं भी। इनका घर चल रहा था और मैं अपनों की आँख में, पति के घर में रह रही थी। क्या कहते हैं आपकी अँग्रेजी में श्रीमती कनकलता प्रसाद से बस एक हाउस मेट बनकर। यह बात दूसरी है कि इन लोगों ने मुझे मेट नहीं हाउसकीपर या हाउसहेल्पर ही कहा। अँग्रेजी में कहो या हिन्दी में अर्थ तो नहीं बदल जाता। गाली तो गाली ही रहती है, फाउल माउथ तो साफ नहीं हो पाता। मैं चुपचुप हर एब्यूज और दुर्व्यवहार सहती झेलती रही। भूखी-भूखी पिटती और खटती रही। खाना बनाती, छाड़ू-पोंछा करती, कपडे-बिस्तर सब कुछ और शाम होते ही इसके आने के पहले चुपचाप आँसू पीकर अपने कमरे में बन्द हो जाती।

यही मेरा काम था। यही मेरी ड्यूटी थी। यही बताया था मुझे अल्वा और इसने। इसके बदले में यह मेरे बेटे को पाँच हजार रुपए हर महीने भेजता था। कितने कम पैसों में दोनों जिम्मेदारियाँ निभ जाती थीं। बाप का फर्ज और ब्याहता का कर्ज। कितनी आसानी से, दोनों से ही सिलट जाता था यह। और शायद इसकी आत्मा भी नहीं कचोटती थी कि मुझसे मुफ्त में काम करा रहा है। वैसे पता नहीं आत्मा थी भी या नहीं। पर मैं खुश थी। मेरा राकेश माउन्ट-व्यू स्कूल, बंगलौर में पढ़ रहा था और एक दिन जब बड़ा होकर, खूब बड़ा आदमी बनकर आएगा, मेरे सारे ही आँसू पोंछ देगा। अब तो शायद इसके कंधे तक आता होगा। क्या पता हल्की-हल्की मूँछें भी आ गई हों। इससे तो बहुत अच्छी कद-काठी का है वह। पता नहीं मुझे पहचान भी पाएगा या नहीं?" बेटे की याद आते ही कनकलता अपने दुख को थोड़ी देर के लिए बिल्कुल भूल गई। उसकी गर्वीली दीप्त मुस्कान तैरकर आँसुओं के संग पूरे चेहरे पर फैल गई।

"पर यह सब कैसे हुआ?" उसकी जली पीठ के घाव और टूटी कंधे की हड्डी के बारे में चाहकर भी, मैं खुलकर कुछ भी तो नहीं पूछ पा रही थी।

"यह सब तो मेरी नौकरी के साइड पर्क हैं।" उसने दर्द से तार-तार, रोने से भी बदतर मुस्कुराहट से मुझे बताया - "यह तो रोज की ही बात है। कभी मँहगी क्राकरी टूट जाने से, तो कभी हारी-बीमारी की बजह से। जब भी काम रह जाए तभी। शुरु-शुरु में तो बस डाँट पड़ती थी, फिर मार पड़ने लगी। और फिर जब मेरे दुखते तन और मन से गलतियाँ होती ही गईं, तो बात और भी अधिक शारीरिक दुर्व्यवहार तक जा पहुँची। वैसे जलते गरम चिमटे से तो मैं डॉ. वर्मा से मिलने के बाद ही पिटने लगी थी।"

दो पल रुककर कनकलता ने अपने उमड़ते दुख को लगाम देनी चाही फिर बिना कुछ पूछे, बिना कुछ सुने ही, बोलती चली गई। मानो मुझसे नहीं खुद से बात कर रही हो, मानो आज एकबार सब कुछ दबा-ढँका

याद करके हमेशा के लिए भूलना चाहती हो या फिर बरसों का पकता फोड़ा आज हलके से छू भर जाने से लपलप फूट पड़ा था। और अब इस सारे सडे-ग़ले मवाद और पानी को बहाकर ही रुक पाएगा।

"डॉ. वर्मा हमारे पास के दरभंगा के ही थे। उनकी पत्नी शीला से मैं यूँ ही बाजार में आते-जाते मिल गई थी। बाद में जब उन्हें पता चला था कि वह मेडिकल स्कूल में मेरे बड़े भाई के साथ ही पढ़ी थीं, तो मेरे लिए उनके मन में एक हमदर्दी, एक अपनापन-सा हो गया।

कभी-कभी तो वह खुद ही शाम को मेरे पास आने लगीं, मुझे भी बुलाने लगीं। ऐसी ही एक दीवानी शाम को मैं अपने घर और अपने बारे में सबकुछ बता बैठी। घर की इज्जत भरे बाजार में उघाड दी। बातों-बातों में बात डॉ. वर्मा के कानों तक जा पहुँची। वह खुद मुझसे पूछने आए कि उन्होंने जो कुछ सुना है, समझा है, क्या सच है? मैं अभागिन जबाब तक न दे पाई, बस फूट-टफूटकर रोती रह गई। कैसे कहती कि मेरी माँग तो सिन्दूर से ही भरी गई थी पर मैं कुलच्छिनी ही कुछ न सँभाल पाई और न जाने कब अपनी माँग राख से भर लाई। उन्होंने मुझे छोटी बहन की तरह सान्त्वना दी। समझाया कि सब फिर से ठीक हो जाएगा। वह इस नर्स अल्वा को निकालकर ही दम लेंगे। जरूरत पड़ी तो मार-पीट से भी नहीं हिचकिचाएँगे। क्योंकि एक बीबी के रहते दूसरी शादी न भारत में की जा सकती है और न यहाँ यूरोप में। हमारा बेटा राकेश भी यहाँ आ जाएगा। और तब हम खुशी-खुशी एक साधारण परिवार की तरह साथ-साथ ही रहेंगे।

और अगर हैरी नहीं माना, उनकी बात नहीं सुनी, तो वह उसकी अकल ठिकाने लगवा देंगे, जेल तक भिजवा सकते हैं। इतनी पहुँच और पहचान तो उनकी है ही यहाँ पर। ससुरा, साइकैट्रिस्ट बनना चाहता है, अपने घर तक को तो सँभाल नही पा रहा, मरीजों की मानसिक बीमारी क्या दूर कर पाएगा? और उसी दिन शाम को ही डॉ. वर्मा ने मेरे पति का कॉलर कार से निकलते ही, वहीं घर के दरवाजे पर ही पकड़ लिया। खड़े-खड़े ही घंटों दोनों में बहुत सारी बातें हुईं। और उस दिन, पहली बार मैं आउट हाउस में नहीं, अपने घर के अंदर सोई। अगले दिन मैंने भगवान के आगे माथा भी टेका था। शायद अब मेरे दिन फिर जाएँ? अब ससुराल और मायका दोनों ही फिर से जो मिल गए थे मुझे। पर वह लँगड़ी खुशी ज्यादा दिन तक न चल सकी। महीने भर के अन्दर ही हम सब केन्ट से उठकर वेल्स के इस छोटे से गाँव में आ गए। उसके बाद तो किसी भी परदे की जरूरत नहीं थी। मैं बस मेट लता थी। बाहर की दुनिया से मेरे सभी कौनटैक्ट तोड दिए गए थे। राकेश की खबर और चिठ्ठियाँ तक मिलनी बन्द हो गईं।

मैके, ससुराल किसी ने भी पलटकर मेरे बारे में नहीं पूछा। शायद सबको ही विश्वास हो गया था कि कनकलता नाम की औरत अब जिन्दा ही नहीं हो सकती।

उसके बाद की कहानी आपके आगे है। हैरी जिस बदहवासी और नफरत से मुझे मारता-पीटता था, उससे किसी पत्थर का सीना भी चटक जाता पर मैं तो जाने किस मिट्टी की बनी हूँ? कुछ भी नहीं चटका-टूटा। एक दिन जब मेरी चोटों से अल्वा डर गई या उसे लगा कि अब मैं किसी काम की नहीं, तो घर से बाहर निकाल फेंका। और हैरी से छुपकर पुलिस को फोन भी कर दिया। और इस तरह से मैं यहाँ, आप लोगों के पास, बोझ बनकर रहने आ गई। एक अनबूझ पहेली-सी, आप सबका कौतुहल बन गई। कहते हैं इन जगहों का पता सबको नहीं मिल पाता, तभी तो वह मुझे ढूँढ नहीं पाया है या शायद उसने इसकी जरूरत ही नहीं समझी होगी।"

उसकी आँखों की नकारात्मक खाइयों में लगा वह खुद को कब का डूबो चुकी थी। इतनी घृणा और नफ़रत की जिन्दगी एक ही जीवन में जी पाना इतना आसान तो नहीं। जिन्दगी किसी के लिए इतनी कड़वी और दगाबाज हो सकती है यह मेरे लिए आज एक नया और घिनौना सच था। जी करा कि उस सामने दुहरी बैठी कनक को बाँहों में भर लूँ। बच्चों सा प्यार दूँ।

चौके से गरम-गरम सूप ले आई और अपने हाथों से उसे पिलाने लगी। उसकी आँखों का हर आँसू चुपचाप बहकर मेरे मन में उतर रहा था। अब शायद वह बहुत थक गई थी। उसे आराम चाहिए था। नहाना-धोना तो कल भी हो सकता है। मैंने उसके रूखे और उलझे बाल, हलका-सा तेल लगाकर काढ़ दिए। शायद थोड़ा चैन मिला हो। साफ-सुथरे, अभी-अभी बदले बिस्तर में उसे लिटाकर मैंने पूछा, "कनक अब तुम्हें आराम करना चाहिए मैं कल फिर आऊँगी। खूब सारी बातें करेंगे और बंगलौर में राकेश से भी तुम्हारी बात करवाएँगे। तब तक तुम अपना ध्यान रखना और आराम से सोना। मैं यह बत्ती बन्द कर देती हूँ, पर यह नाइट-लाइट जली छोड़ देती हूँ। यह कॉल-बेल भी तुम्हारे बिस्तर के पास ही है। किसी भी चीज की जरूरत हो तो बुला जरूर लेना, नर्स तुरंत ही आ जाएगी। तुम काफी कमजोर और बीमार हो। तुम्हें मदद लेने में झिझकना नहीं चाहिए। आदमी ही आदमी के काम आता है। तुम ठीक हो जाओ, तो चाहो तो, तुम भी कई दीन-दुखियों की मदद कर सकती हो। तुम्हारा काम मैं यहीं पर लगवा दूँगी। यह पानी का जग और थोडी-सी दर्द की गोलियाँ छोड़े जा रही हूँ। ज़रूरत समझो तो ले लेना।"

उसने बेहद थकी नज़रों से मेरी तरफ देखा और विदा में हाथ जोड़ दिए।

सुबह-सुबह फिर से फोन की कर्कश घंटी बजी और फिर से नींद पूरी होने से पहले ही मेरी आँख खुल गई। आज तो सात भी नहीं, सुबह के छह ही बजे थे। लाइन पर फिर से बारबरा ही थी। जल्दी से आओ। तुम्हें मेरी मदद करनी है। इट इज एन इमरजेंसी। मैं कुछ पूछूँ, कहूँ, इसके पहले ही वह फोन रख चुकी थी।

आधे घंटे के अंदर ही मैं क्राइसिस सेंटर में थी। सब लोग इधर-उधर दौड़-भाग रहे थे मानो आज इस सेंटर में कोई बडी सी क्राइसिस टूट पडी थी। रिसैप्शन पर ही ली ने कनक के कमरे की तरफ जाने का संकेत कर दिया। धड़क़ते दिल से मैं लिफ्ट का कॉल-बटन दबाकर, बेचैन, सीढियों पर दौड पड़ी। लिफ्ट का खुला दरवाजा कुछ देर इंतजार करके, यूँ ही बन्द हो गया।

सामने बारबरा दरवाजे पर ही खड़ी मिली, लगता है रात में ही सब खतम हो गया। हमने तो सोचा था कि शायद अब खुली है, तो ठीक ही हो जाएगी।

मेरी नजर चैन से सोई कनकलता पर पड़ी, क्या बात है? क्यों तुम परेशान हो बारबरा, यह तो बस सोई हुई है? मैने खुद को तसल्ली देनी चाही।

"शायद कौरोनर केस हो। इस बृहस्पतिवार को ही क्रिमिनेशन है। यहीं फॉरेस्ट एकड़ ग्रेवयार्ड में। आ पाओगी, तो अच्छा ही होगा। हमें तो तुम्हारे हिन्दू संस्कारों के बारे में कुछ भी पता नहीं। तुम शायद जानती हो या किसी से पूछकर ही आ जाना। बेचारी की आत्मा को शान्ति मिल जाएगी। वैसे भी, हमें तो नहीं पता कि इसका कोई रिश्तेदार है भी, या नहीं? तुम्हें किसी के बारे में, इसने कुछ बताया हो तो इन्फॉर्म कर देना।

मेरी ग्लानिपूर्ण अपराधी आँखों ने बिस्तर के नीचे लुढ़क़ी खाली दवा की शीशी को देख लिया था। खुद को समझा पाना बहुत ही मुश्किल हो रहा था। कनक सच में ही मुझसे जुड़ गई थी। क्या ज़रूरत थी इसे यह गोलियाँ पकड़ाने की? क्या अपनों से विश्वासघात की, मुँह खोलने की यह सजा दी है उसने खुद को? उसे तो दर्द सहने की आदत थी? कभी-कभी भला चाहते हुए भी, हम जाने किस-किस अनर्थ के साधन बन जाते हैं! शायद मैं अपने को कभी माफ न कर पाऊँ! घर लौटते ही सबसे पहले राकेश को बंगलौर फोन मिलाया। पता चला कि राकेश प्रसाद नाम का तो कोई बच्चा वहाँ कभी आया ही नहीं। वह भी मोतीहारी से तो हरगिज ही कोई भी, कभी भी नहीं। पिछले बीस साल में तो नहीं ही। हाँ, झरिया का एक राकेश अवस्थी जरूर है। यदि मैं चाहूँ, तो उसे वे बुला सकते हैं या मैसेज वगैरह दे सकते हैं।

चुपचाप भारी मन से फोन रख दिया। कनक के राकेश का कोई और पता-ठिकाना मेरे पास नहीं था, जहाँ मैं कुछ बता सकती? वैसे उस बच्चे की माँ तो, उसके लिए शायद तभी मर गई होगी जब उसकी माँ को

उसका दादा इंग्लैंड छोड़ आया था। अकेले ही, उसके हाथ से आँचल छुड़ाकर। अब उसे दुबारा रुलाने से क्या फायदा? मुश्किल से ही बेचारे के आँसू सूख पाए होंगे?

मैं उठी और कनक की याद का दिया जलाकर भगवान के आगे रख दिया। बचपन में सुना था कि चार दिन तक मृतात्मा अपनों के आसपास ही भटकती रहती है। कनक को शायद मेरी जरूरत हो? आखिर अब और उसका है ही कौन, जिसके पास वह जा पाएगी?

इतना बड़ा छल? बिचारी यूँ ही बेकार में ही पिसती रही? जिस बेटे के लिए खुद को तिल-तिल मारा, उसे तो कुछ भी नहीं मिल पाया। कभी किसी अच्छे स्कूल में नहीं भेजा गया उसे। क्यों रो रही हूँ मैं? वैसे भी तो कनक की जर्जर जिन्दगी, बस एक-के-बाद-एक, व्यर्थ की दुर्घटनाओं और यातनाओं से घुनी और रिसी हुई ही थी। आज तो उसके मोक्ष का दिन है। माँ के अपने जन्मदिन के लिए भेजे कपड़े मैंने निकाल लिए और बृहस्पतिवार के लिए सँभालकर थैले में रख दिए।

हलके नीले रंग की उस बूटों वाली माँ की भेजी कीमती चंदेरी साड़ी में, नहाई धोई, सलीके से बाल कढी क़नक, बहुत ही सुन्दर और नाजुक लग रही थी। बिल्कुल नरगिस के फूल-सी। वह कितनी सुन्दर थी, आज सभी बस यही कह रहे थे।

"कैसी सुन्दर लड़की यूँ ही भटक-भटककर व्यर्थ हो गई। ओवर-डोज का ही केस था। कौरोनर ने यही मृत्यु का कारण लिखा है। हमें तो पता भी नहीं था कि इसके पास पैनाडौल की शीशी भी है। तुम इन्डियन लेडीज, ब्लाउज को पर्स की तरह भी इस्तेमाल करती हो, हमें यह बात नहीं मालूम थी। इसके पास से यह सामान भी मिला है। बारबरा ने राकेश की फोटो और बिछुए मेरी तरफ बढ़ा दिए।

"आई डोन्ट नो वाट टु डू विथ हर? क्या पादरी को बुलाएँ? या तुम खुद ही कुछ और करना चाहोगी या फिर बस अब चलें?"

बारबरा ने मुझ से फिर से पूछा? मुझे अब समझ में आया कि कहाँ क्या कमी रह गई थी? कनक इतनी सज-धज कर भी इतनी अधूरी और उदास क्यों लग रही थी?

हाथ फैलाकर वे दोनों चीजें उससे ले लीं मैंने। फोटो को वापस अपनी जगह पर, वैसे ही कनक के सीने के पास रख दिया और बिछुए उन कमजोर नाजुक ठंडी उगलियों में पहना दिए। मैंने देखा उसकी बिन्दिया भी अब कुछ और ज्यादा ही चमक रही थी और कनक के बंद होंठ भी अब मुझे पूरी तरह से संतुष्ट लग रहे थे। आखिर जिन-जिन चीजों को उसने कभी अपने से अलग नहीं किया, जिन पर शायद उसे हमेशा गर्व और संतोष रहा था, अब फिर से उसके पास पहुँच चुकी थीं। अब वह जाने के लिए पूरी तरह से तैयार थी। सब कुछ अपनी जगह पर सही और ठीक लग रहा था।

मैंने भरपूर नजरों से आखिरी बार उसे देखा और आँखें चुराकर, भर आई आँखों को पोंछ डाला। भगवान से मन ही मन प्रार्थना करने लगी कि, भगवान अगले जनम में इसके लिए ढेर सारी खुशियाँ और सुख लिखना मत भूलना। इसकी गलतियों को माफ करना और इसका ध्यान भी रखना।

बारबरा जाने कब से पीछे खडी सब कुछ देख रही थी। आकर उसने मेरी पीठ पर हाथ रख दिया। "अब चलें? हर बात इतनी मन पर मत लिया करो। तुम तो भगवान में विश्वास करती हो? तुम्हारी गीता में ही तो लिखा है कि हमारे हाथ में बस कर्म है फल नहीं। और जानती हूँ कर्म करने में कभी पीछे नहीं हटी हो तुम। तुम बस इतना ही कर सकती थीं। उसकी तो बस इतनी ही जिन्दगी थी। इतनी ही साँसें लेकर आई थी वह।" मेरी उदास और सूनी आँखें देखकर, उसने एकबार फिर मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया और बेहद धीमे स्वर में बोली, मानो मुझे ही नहीं खुद को भी समझा रही हो।

"वैसे भी मरने की कोई उमर तो नहीं होती। हरेक के हर पल और हर साँस पर ही मौत का अधिकार है। हम सभी, बस एक उधार की जिन्दगी ही तो जीते हैं। लो, आँसू पोंछ लो। यह तो अब अपने सब कष्टों से मुक्त हो गई है। क्या पता एक बहुत ही अच्छा और सफल जनम इसका इन्तजार कर रहा हो। आई होप यू अन्डरस्टैंड मी, आई मीन, रिबर्थ। तुम हिन्दू, खुद को, हर हाल में बहलाना कितनी अच्छी तरह से जानते हो। काश हम भी, इतने ही समझदार और आशावादी हो पाते।"

वह क्या कहना चाह रही थी, क्या कह गई, मैं कुछ समझ नहीं पाई पर बारबरा की हँसी इस समय मुझे बहुत ही बेतुकी और खोखली लग रही थी। शायद वह बस एक नर्वस हँसी ही थी, उसका और कोई मतलब नहीं था। कनक और दोनों काली कारें धीरे-धीरे अपनी यात्रा के आखिरी पड़ाव पर चल पड़ी थीं।

लाल ट्रैफिक-लाइट पर रुकी मैं सोच रही थी कि अगर सच में कहीं भगवान है और अगर वाकई में वह दीनानाथ है तो इतना तो वह भी जान ही गया होगा कि अब कनक को एक बहुत अच्छा जन्म ही मिलना चाहिए क्योंकि वह अगले-पिछले कई जन्म की तकलीफें इसी जन्म में झेल चुकी थी। अब तो उसके हिस्से का सुख-ही-सुख बचना चाहिए। अभागिन को यूँ अकेले लावारिसों की तरह विदा करते हुए बादलों का मन भी उमड़ा पड़ रहा था। पर अगले पल ही गहरे काले बादलों से एक बहुत ही सुन्दर, सुनहरा सूरज निकल आया।

शायद वह सच में कभी-कभी इधर से गुजरता है। हमारी प्रार्थना सुनता है और लगता है आज मेरी सोच को उसने भी अपनी स्वीकृति दे ही दी थी। बरबस ही उमड़ आए आँसुओं को पोंछकर एकबार फिर से स्वस्थ और तटस्थ होना चाहा, परन्तु हो नहीं पाई। एक अवसाद, एक अधूरापन लगातार मथे जा रहा था। यह मेरे लिए एक और नया सच था। मन का कोई एक कोना अभी भी कनक से जुड़ा रह गया था और जुड़ा रहना भी चाहता था। कोई रिश्ता न होकर भी कनक भावात्मक रूप से मुझसे पूरी तरह से जुड़ चुकी थी और उसकी सारी जिम्मेदारियाँ अब मुझे अपनी लगने लगीं। उसने मुझ पर पूरा विश्वास किया था और उसके इसी भरोसे का मान रखते हुए मुझे शीघ्र ही राकेश को भी ढूँढना होगा।

घर पहुँचते ही मैंने खुद को फोन पर भारत की टिकिट खरीदते पाया। मोतीहारी में राकेश कैसा है, क्या उसकी जरूरतें हैं, यह सब जानना न सिर्फ जरूरी, अपितु अब मेरे जीवन का सबसे बड़ा ध्येय बन चुका था।

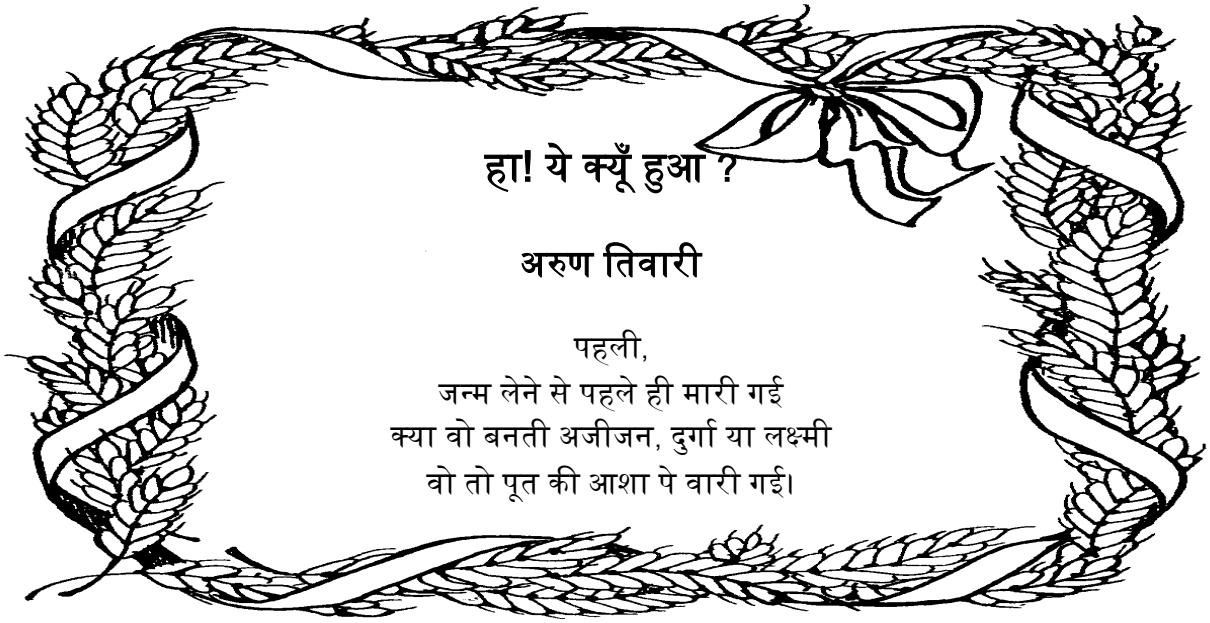

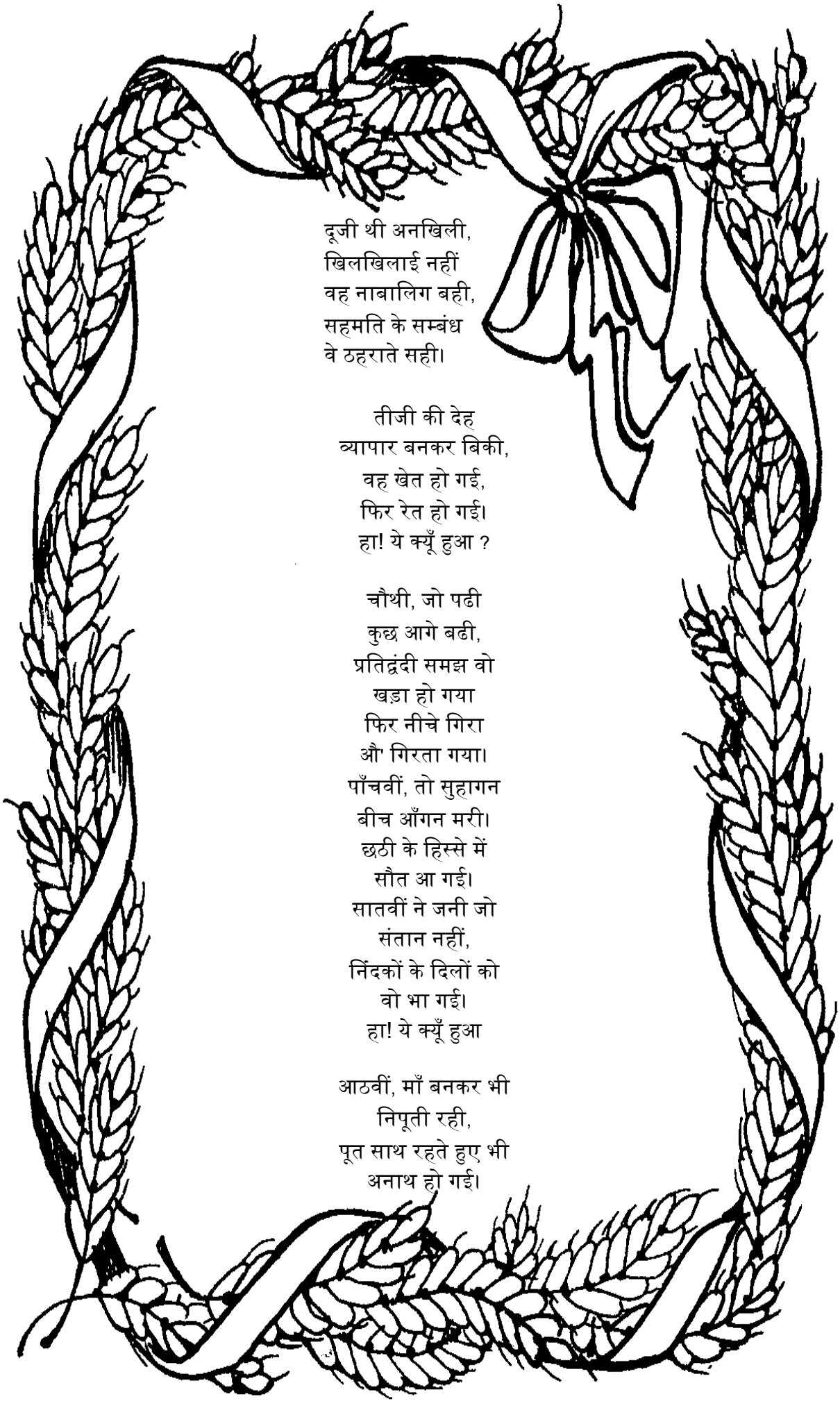

दूजी थी अनखिली,
खिलखिलाई नहीं
वह नाबालिग बही,
सहमति के सम्बंध
वे ठहराते सही।

तीजी की देह
व्यापार बनकर बिकी,
वह खेत हो गई,
फिर रेत हो गई।
हा! ये क्यूँ हुआ ?

चौथी, जो पढी
कुछ आगे बढी,
प्रतिद्वंदी समझ वो
खड़ा हो गया
फिर नीचे गिरा
औ' गिरता गया।
पाँचवीं, तो सुहागन
बीच आँगन मरी।
छठी के हिस्से में
सौत आ गई।
सातवीं ने जनी जो
संतान नहीं,
निंदकों के दिलों को
वो भा गई।
हा! ये क्यूँ हुआ

आठवीं, माँ बनकर भी
निपूती रही,
पूत साथ रहते हुए भी
अनाथ हो गई।

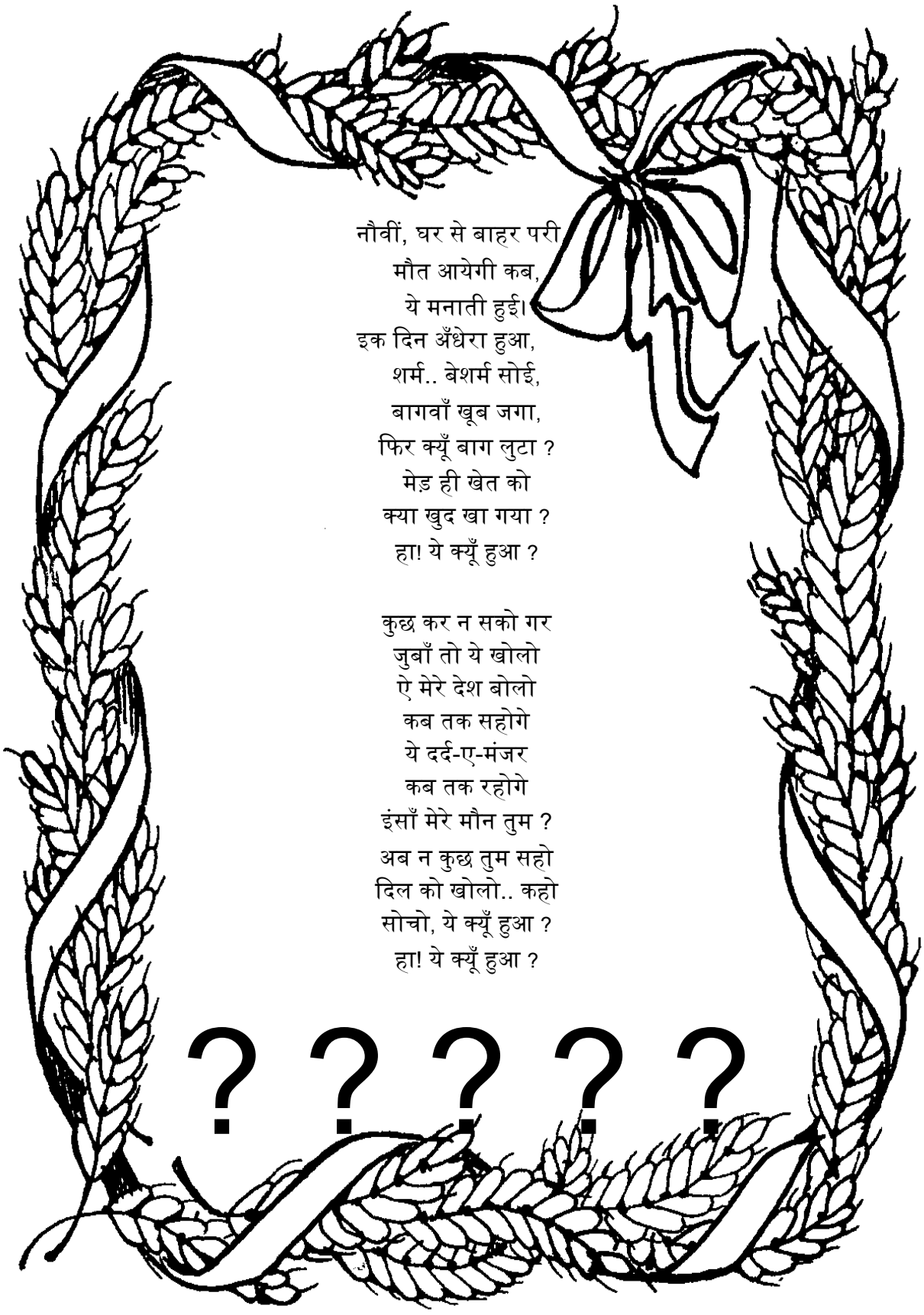

नौवीं, घर से बाहर परी
मौत आयेगी कब,
ये मनाती हुई।
इक दिन अँधेरा हुआ,
शर्म.. बेशर्म सोई,
बागवाँ खूब जगा,
फिर क्यूँ बाग लुटा ?
मेड़ ही खेत को
क्या खुद खा गया ?
हा! ये क्यूँ हुआ ?

कुछ कर न सको गर
जुबाँ तो ये खोलो
ऐ मेरे देश बोलो
कब तक सहोगे
ये दर्द-ए-मंजर
कब तक रहोगे
इंसाँ मेरे मौन तुम ?
अब न कुछ तुम सहो
दिल को खोलो.. कहो
सोचो, ये क्यूँ हुआ ?
हा! ये क्यूँ हुआ ?

? ? ? ? ?

प्राचीन भारत में राष्ट्रवाद

डॉ. रवीश कुमार

"**दुर्लभ भारते जन्म मनुष्यं तव दुर्लभम्**" - अर्थात् भारत में जन्म (किसी भी जीव का) प्राप्त करना दुर्लभ है, उस पर मनुष्य जन्म तो और भी दुर्लभ है। इस तथ्य से प्रत्येक प्राचीन भारतीय परिचित था तथा और साथ ही उसे भारत भूमि में जन्म लेने का गर्व भी था। वह भारत भूमि जिसकी प्रशंसा के गीत देवता भी गाते रहते हैं।[१] स्पष्ट करना होगा कि मानव ही नहीं देवताओं द्वारा भी पूज्य वह भूमि (राष्ट्र) कौन सी है? और उस राष्ट्र का भू-भाग कहाँ तक विस्तृत था, संस्कृत वाड्मय विशेषकर पुराणों में यत्र-तत्र भारत वर्ष की भौगोलिक सीमा के विस्तार का विस्तृत वर्णन बिखरा हुआ है। ब्रह्माण्ड पुराण[२] एवं विष्णु पुराण[३] के अनुसार दक्षिण पयोधि (हिन्द महासागर) के उत्तर में तथा हिमवद् (हिमालय) के दक्षिण अर्थात आसेतु हिमालय से हिन्दमहासागर तक का क्षेत्र भारत वर्ष है और इसमें भारतीय सन्तति निवास करती है। हिमालय इस देश के उत्तर में पश्चिम से पूर्व तक धुनष की प्रत्यंचा के समान विद्यमान है। पूर्व से पश्चिम भारत का विस्तार ब्रह्मा (वर्तमान वर्मा अथवा म्यांमार) से लेकर हिन्दुकुश (ईरान की पूर्वी सीमा) तक था। **इसी कारण सुप्रसिद्ध इतिहासकार सर विन्सेण्ट स्मिथ ने भी हिन्दुकुश पर्वतमाला को पश्चिम में भारत की वैज्ञानिक सीमा घोषित किया है।** इस प्रकार प्राचीन अखण्ड भारत वर्ष में वर्तमान भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान (प्राचीन गान्धार), तिब्बत (प्राचीन त्रिविष्टप), बांग्ला देश, श्री लंका, नेपाल, भूटान एवं म्यांमार (प्राचीन ब्रह्मा) के भू-भाग सम्मिलित थे।

उपुर्यक्त भू-खण्ड को वेदों में एक "राष्ट्र" की संज्ञा से अभिहित कर राष्ट्र के आधारभूत तत्वों उपयोगिता, महत्ता तथा उसके प्रति जनता के दायित्वों एवं कर्तव्यों की विस्तृत अति वैज्ञानिक विधि-विधान पूर्वक व्याख्या की गई है। यह निश्चय ही वेदों की राष्ट्रीय भावना का द्योतक है। **भारत विश्व का प्रथम् राष्ट्र है।** वेदों में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया की विवेचना है। किसी भी देश की भूमि पर राष्ट्र के सृजन की अवधारणा विश्व में सर्वप्रथम् भारत वर्ष ने विश्लेषित की थी। इतना ही नहीं देश और राष्ट्र, राष्ट्र और राज्य एवं राष्ट्रभक्ति और नागरिकता में अन्तर का चिन्तन भी सम्पूर्ण पृथ्वी पर सर्वप्रथम भारतीय मनीषियों ने ही किया था।[४] राष्ट्र की व्युत्पत्ति व्याकरण शास्त्र के आधार पर करने पर **"राजते यत् तत् राष्ट्रम्"** अर्थात जो सदैव देदीप्यमान एवं शोभायमान हो वह राष्ट्र शब्द से व्यहृत होता है। किसी देश की देदीप्यमानता एवं शोभा तभी अक्षुण्ण एवं चिरकालिक हो सकती है, जहाँ का जनमानस अपने सम्पूर्ण देश के सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक और प्राकृतिक स्थितियों से मेल करते हुये व्यावहारिक प्रचलन को सुरक्षित रखे।[५]

तद्नूरूप भारतवर्ष, ईश्वर की असीम प्रेरणा का रूप बन कर भारत धरा पर अवतरित अप्रतिम् तेजस्वी तपस्वी सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, जिसका अपर पर्याय राष्ट्र या देश होता है। यह सुनिश्चित है कि जिसका नामकरण जैसा होता है वैसी ही उसकी अन्वर्थता एवं सार्थकता चरितार्थ होती है।

भारत शब्द का भादीप्तौ धातु से समास करने पर "भायाम् रतम् इति भारतम्" अर्थात जो कान्ति से संयुक्त हो। अतएव, राष्ट्र एवं भारत शब्द की व्युत्पत्ति में पूर्ण एकार्थता सिद्ध होती है।

हमारे ऋषियों ने भरत एवं भारत शब्द का प्रयोग साभिप्राय किया है। क्योंकि भरत "न भूतो न भविष्यति" - एक ऐसे अप्रतिम् पराक्रमी, चक्रवर्ती और प्रजा रंजक सम्राट के रूप में अवतरित हुये कि भरत और भारत से स्वयं को सम्बद्ध कर यहाँ का जन-जन विशेष गौरव का अनुभव करने लगा अैर वही आत्म गौरव उनकी राष्ट्रीय चेतना किंवा राष्ट्रीय भावना का अदम्य और अजस्र उत्स बन गया। फलस्वरूप, एक ओर ऋषिगण

भारत देश की सर्वतोमुखी रक्षा हेतु स्तुतियों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करते रहे हैं, तो दूसरी ओर क्षात्रतेजोयुक्त भारतीय सैनिक भी अपने शत्रुओं को सोत्साह अतीव पराक्रम से परास्त करते रहे हैं।

वेदों के सदृश्य पुराणों में भी पूर्वोल्लिखित अखण्ड भारत भूमि की कल्पना एक देवी--विष्णु पत्नी अर्थात भारत माता के रूप में की गयी है। प्रत्येक भारतीय अपने राष्ट्र की माँ और देवी के रूप में प्रातः काल शयन से उठते ही (प्रातः स्मरणीय मन्त्र) श्रद्धामय अर्चना करता था –

समुद्रवसने देवि पर्वत स्तन मण्डले।
विष्णु पत्नि नमस्तुभ्यं पाद स्पर्शं क्षमस्व मे।।[६]

ऋग्वेद विश्व का प्राचनीतम् ग्रन्थ है। ऋग्वेद सहित अन्य समस्त वेदों ने भी सर्वप्रथम समग्र भारत वर्ष की एक राष्ट्र देवी (भारत माता) के रूप में परिकल्पना की है।[७] वेदों का मत है कि यह राष्ट्र देवी जन-जन में ओत-प्रोत है, राष्ट्र की धरती और आकाश के कण-कण में व्याप्त है तथा समस्त राष्ट्र में आनन्द का संचार करती है। यही वह शक्ति है जो राष्ट्र को दुर्धर्ष (तेजस्वी), ज्ञान सम्पन्न, प्रतिष्ठावान, शौर्यवान एवं विविध आविष्कारों से युक्त कर धन-धान्य से परिपूर्ण करती है। राष्ट्र की सम्पदा का विनाश करने वालों के विरुद्ध क्षात्रशक्ति को आयुधों से सम्पन्न कर जनमानस को राष्ट्र की रक्षा हेतु राष्ट्र नायक के निमार्ण की प्रेरणा भी यही देती है। इसका प्रादुर्भाव जनमानस से होता है और इसका वेग झंझावात की भाँति प्रचण्ड एवं व्यापक होता है।[८]

फलस्वरूप भारतवर्ष में जन्म लेने वाले सभी प्रकार के भारतीयों में एक विलक्षण रागात्मक सुदृढ़ बन्धुता का उदय हुआ जिससे प्रेरित होकर प्राचीन भारतीय छोटे-बड़े (ज्येष्ठत्व, कनिष्ठत्व और मध्यमत्व) का भेद भूलकर सबको एक ही भारत माता की कुक्षि (कोख) से उत्पन्न (पृष्निमातरः) मानकर अपनी मातृभूमि के विकास एवं रक्षा कार्यों में सर्वात्मना सन्नद्ध रहने में स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करने लगे।[९] वैदिक ऋषि अपनी मातृभूमि के प्रति अत्त्यंत भावुक रहे हैं। उनकी दृष्टि में उनकी मातृभूमि ही सर्वस्व है। अस्तु, वे सदैव अपने राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास एवं समृद्धि की ही मंगल कामना करते हैं।[१०] राजा के मस्तक पर तिलक करते समय भी ऋषिगण अपने राष्ट्र के लाभ की हार्दिक अभिलाषा रखते तथा यही आशीर्वाद भी देते थे। राष्ट्रनायकों से भी यही अपेक्षा थी कि वे राष्ट्र को स्थिरता प्रदान करते हुये उसका सर्वतोमुखी कल्याण करें।[११] इतना ही नहीं नवदम्पति को आशीर्वाद देते समय भी ऋषिगण अपने राष्ट्र की चिन्ता से ग्रस्त रहते थे। वर-वधू को अपने राष्ट्र की समृद्धि करते हुये ही अपनी समृद्धि करने का आशीर्वाद दिया जाता था।[१२]

वैदिक ऋषियों ने अपनी मातृभूमि को तेज और बल से परिपूर्ण उत्तम् राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित किया है।[१३] प्राचीन भारतीय इस तथ्य से भली-भाँति सुपरिचित थे कि भारत राष्ट्र की अखण्डता एवं प्रगति परस्पर प्रगाढ़ एकता से ही सम्भव है। अतएव, ऋषियों ने राजा को पाँचजन्य के विशेषण से विभूषित किया [१४] -- जिसका अर्थ है समाज के समस्त वर्गों का नायक। संगठन को भारतीय कुलीनता, तेजस्विता, शक्तिसम्पन्नता एवं सुरक्षा का सुदृढ़ साधन मानते थे, इसी से चिरकालिक प्रसन्नता की प्राप्ति होती है।[१५] ऋषिगण राष्ट्रहित के कार्यों के लिये संगठन को परम् आवश्यक बताते हुये, सदा निर्विवाद एकता बनाये रखने का निभ्रान्त उपदेश देते हैं। जन सामान्य से आह्वान किया गया कि वे अपने मन, विचार और क्रियाकलाप से परस्पर मतैक्य रखें।[१६] प्राचीन ऋषि राष्ट्र की एकता अखण्डता के लिए यज्ञ तक करते थे। उन्होंने सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय, दिव्योपम् विशाल तथा कल्याणकारी संवेष्य राष्ट्र के लिये देवताओं से प्रार्थना की है।[१७]

वेदों ने भारतवासियों को उपदेश दिया है कि वे विभिन्न भाषाओं में वार्तालाप करते हुये (विभिन्न भाषा-भाषी) एवं अपनी इच्छानुसार किसी भी ईश्वर (सम्प्रदाय) की उपासना करते हुए भी समग्र राष्ट्र को अपना गृह समझें और समवेत रूप से इसकी देखभाल किंवा रक्षा करें, क्यों कि तभी हमारा राष्ट्र ऐश्वर्यशाली होगा।[१८] इसी कारण ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में समाज के चारो वर्णों को एक ही विराट पुरुष परम् पिता ब्रह्मा के शरीर अवयवों से प्रादुर्भूत घोषित कर सभी व्यक्तियें में सजातीय एकता का आरोपण किया गया है।[१९] यह भी

घोषणा की गयी कि समस्त भारतवंशी एक ही भारत माता की सन्तान हैं, हम सभी उसके हैं और वही हमारा पालन-पोषण करती है। अतएव, हमें द्वेषभाव त्याग कर परस्पर संगठित रहना चाहिये।[२०]

भारतवासियों को आदेश दिया गया है कि वे सदैव मिलकर चलें, मिलकर बोलें, मिलजुलकर ज्ञान प्राप्त करें, परस्पर सम्पर्क में रहें, सौमनस्यता रखें, दायित्व स्वीकार करें, मिलकर मन्त्रणा करें, समितियों में समान अधिकार समझें, उद्देश्य में समानता रखें एवं सभी व्यक्ति साथ-साथ कार्य करें इत्यादि।[२१] स्पष्ट है कि आज से लाखों वर्ष पूर्व संस्कृति के उषाकाल से ही भारतीय अपने राष्ट्र की एकता-अखण्डता के प्रति अत्यन्त जागरूक एवं सन्नद्ध थे।

वैदिक काल से ही भारतीयों में समस्त राष्ट्र के पर्वतों, नदियों, वनों एंव नगरों के प्रति श्रद्धा और आस्था रही है तथा इन पर उन्हें गर्व था। इनका मानवीयकरण कर देवी-देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया।[२२] राष्ट्र विकास की योजनायें अनवरत चलती रहती थीं और ऋषिगण सतत् राष्ट्र की मंगल कामना करते रहते थे।[२३] **ऋग्वेद का निर्देश है कि राष्ट्र द्रोहियों को कदापि पनपने न दें, उन्हें तत्काल समूल समाप्त कर दें। अपने राष्ट्र की भूमि का शोषण करने वालों का विनाश और शत्रुओं द्वारा अधिकृत भूमि को स्वतन्त्र करायें।**[२४]

विश्व के किसी भी जन समुदाय में पूर्ण विकसित राष्ट्र की तब तक सम्भावना नहीं होती है, जब तक कि उस जन समुदाय की अपनी कोई स्थिर भूमि और देश न हो तथा वह उसे अपनी मातृभूमि न समझता हो। राष्ट्र के निर्माण के लिये उसके समस्त आवश्यक तत्व अनिवार्य एवं किसी राष्ट्र की सावयवी एकता की आधारशिला होते हैं। **प्राचीन भारतीय मनीषियों ने पाश्चात्य राजनीतिशास्त्रकारों से बहुत पूर्व और उनसे उत्कृष्ट राज्य के सात (सप्तांग) आधारभूत तत्वों की अवधारणा का विमर्श किया है।** इस प्रकार एक पूर्ण विकसित राष्ट्र के निवासी अपने देश को अपनी जन्मदात्री माँ के सदृष्य ही मातृभूमि समझने लगते हैं। अपनी जन्मदात्री माँ के समान उसके सभी गुण-दोष के साथ उसे स्वीकार करते एवं उसके लिये सभी कष्ट सहने को तत्पर रहते हैं। देश की प्रत्येक वस्तु से घनिष्ठ आत्मीयता तथा उस पर गर्व होता है। भारतीय इतिहास में भारत भूमि को अपनी मातृभूमि किंवा माता मानने की मनोवैज्ञानिक भावना एवं प्रथा अनादिकाल से अबाध प्रवाहित है। वाल्मीकि रामायण से दृष्टिगोचर है कि भगवान राम ने अपने अनुज लक्ष्मण से कहा था-

"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

अर्थात् माँ और मातृभमि स्वर्ग से भी महान हैं। **भारतीयों में अपने राष्ट्र को माँ के रूप में मातृभूमि मानने की प्रचण्ड भावना वैदिक काल से सतत् विद्यमान रही है।** अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त के ६३ मन्त्रों में इसका विशद परिलक्षण है। वैदिक ऋषियों की स्पष्ट घोषणा है कि मेरा देश मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ –

"माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः"।। [२५]

यजुर्वेद अपनी मातृभमि को बारम्बार प्रणाम् (नमन्) करने का निर्देश देता है –

"नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्याः"।। [२६]

यजुर्वेद के दशम् अध्याय में राजसूय यज्ञ का वर्णन है। इस अध्याय के विमर्श से यह सिद्ध होता है कि वेदों में अनेक स्थान पर पृथ्वी से अभिप्राय अपने राष्ट्र से ही है और उसे माता कहा गया है।

अथर्ववेद के १२ वें अध्याय के प्रथम् सूक्त के मन्त्रों का आशय किसी राष्ट्र की मातृभूमि से है। इस सूक्त में अपनी राष्ट्र भूमि के प्रति जैसे आदर और प्रशंसा भरे उदात्त भाव व्यक्त किये गये हैं, वैसे भाव आधुनिक विश्व के किसी भी प्रचलित राष्ट्रगीत में नहीं हैं। इस सूक्त के अति वृहत् ६३ मंत्रों की मीमांसा से परिलक्षित होता है कि वैदिक कालीन भारतीयों में अपने राष्ट्र के प्रति कैसी उच्च भावनायें समाहित थीं।

वेदों के सदृश्य समस्त पुराण भारत वर्ष की महिमा के उन्मुक्त गायक हैं। यह पुराणों की विशिष्टता है कि वे ऋग्वेद काल से लेकर अन्त तक समग्र प्राचीन भारतीय इतिहास का प्रतिनिधित्व करते हैं। अस्तु, पुराण आदि काल से मध्य काल पर्यन्त भारतीय इतिहास, सभ्यता एवं संस्कृति के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। वे देश के गौरवपूर्ण

इतिहास के ज्वलन्त पुंज, अध्यात्म रूपी हृदय के उच्छ्वास, मानव जीवन के व्याख्यान तथा भारतीयता के प्रबल प्रतीक हैं।

अतएव, पुराणों में राष्ट्रीय भावना की ऊष्मा का उत्स नितान्त नैसर्गिक है। वे भारतवर्ष का विविध रूपों में प्रशस्ति परक वर्णन करते हैं। पुराण देश के भू-भाग, पर्वतों, नदियों, वनों, जनपदों एवं तीर्थ स्थानों का विस्तृत वर्णन करते हुये उनके प्रति स्वाभिमान व्यक्त करते हैं।[२७] कुल पर्वतों नदियों, जनपदों और तीर्थों इत्यादि के वर्णन से समग्र भारतवर्ष के मानचित्र का एक ऐसा प्रतिबिम्ब उभरने लगता है, जो भारतीयों के मन में अपने राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के प्रति आत्मगौरव की भावना जाग्रत कर देता है। भारत भूमि का अतीव स्पृहणीय महिमा गान करते हुये बृहन्नारदीय पुराण ने इसे फलदायिनी कर्मभूमि घोषित किया है तथा देवता भी इस भूमि पर जन्म लेने को उत्कण्ठित रहते हैं। वह व्यक्ति धन्य, अनुपम और वन्दनीय है जिसने भारतवर्ष में जन्म लिया है। अतः भारत में जन्म लेने अथवा निवास करने वाले व्यक्ति के लिये आवश्यक है कि वह सत्कर्म करके परम् पद प्राप्त करने के लिये तीव्र प्रयास करे। देवताओं की इस विचारधारा से यह सिद्ध हो जाता है कि भारतवर्ष की भूमि परम् पवित्र, कर्मफलदायिनी, परम् प्रशंसनीय है और देवताओं के लिये भी दुर्लभ है।[२८]

मारकण्डेय पुराण में भी भारतवर्ष को कर्मभूमि निरूपित करते हुये यहाँ की विशिष्टता स्पष्ट की गई है कि विश्व में एकमात्र भारत की भूमि ही ऐसी है जहाँ मनुष्य अपने सत्कर्मों का पुण्यार्जन कर सकता है। यहाँ किये गये कर्म का फल अवश्य प्राप्त होता है, जब कि अन्य देशों में किये गये कर्म निष्फल होते हैं। यही कारण है कि यह देश समस्त देशों में सर्वश्रेष्ठ है और इसीलिये देवगण भी भारत में जन्म प्राप्ति के लिये लालायित रहते हैं।[२९] इसी प्रकार वामन पुराण एवं कूर्म पुराण में भी यही वर्णन प्राप्त होता है।[३०]

पुराण सदैव अपने राष्ट्र की अखण्डता की अभिव्यंजना करते हैं। पुराणों के अनुसार व्यभिचारिणी स्त्री तथा दुर्व्यसनों से ग्रस्त पुत्र से जो दुःख और सन्ताप होता है वही दुःख और सन्ताप अपने देश की छिन्न-भिन्नता को निरख कर होता है। स्वाधीनता जीवन की सफलता एवं पराधीनता मृत्यु सदृश्य है। अतएव, राष्ट्र के यश, कीर्ति तथा अखण्डता को अखण्डित रखना चाहिये।[३१] **मातायें अपने पुत्रों को राष्ट्र की सुरक्षा अक्षुण्ण रखने की शिक्षा देती थीं।[३२] देशद्रोह घोर अपराध समझा जाता था।[३३] स्वराज्य की चिरस्थिरता हेतु देशवासी सदैव प्रत्यनशील रहते थे।[३४]**

महाकाव्य काल में रामायण-महाभारत एवं कालिदास, भास, भवभूति, भट्टि, भारवि प्रभृत महाकवियों तथा चाणक्य (कौटिल्य) सदृश्य प्रखर राष्ट्रवादियों ने देश में प्रचण्ड राष्ट्रभक्ति की ज्वाला सदैव देदीप्यमान रखी।

सम्पूर्ण भारत को एक साम्राज्य के अन्तर्गत रखने की शिक्षा राजकुमारों को दी जाती थी तथा प्रत्येक राजा में समस्त भारतवर्ष को विजित कर चक्रतर्वी सम्राट बनने की लालसा रहती थी और यह राजा का "धर्म" भी था। राजपुरोहित एवं ब्रह्म तेजस्वी ब्राह्मण भी राजा को चक्रवर्ती सम्राट बनने की प्रेरणा और आशीर्वाद देते रहते थे। भारत का एकछत्र चक्रवर्ती सम्राट ही "अश्वमेध" करने का अधिकारी था। हिन्दू भारत में राज्याभिषेक का वैधानिक महत्व था। **राज्याभिषेक के समय राजा को देश के समस्त तीर्थों और चारों महासागर के जल से अभिषेक स्नान कराया जाता था। इसका तात्पर्य राजा के अन्तर्मन में समस्त भारतवर्ष की एक राष्ट्र के रूप में एकात्मता का विचार किंवा आसेतु हिमालय से हिन्द महासागर तक उसकी दिग्विजय के प्रतीक स्वरूप प्रोत्साहन था।**[३५] इस प्रकार की महत्वाकांक्षा पुरालेखों में भी अभिव्यक्त हुई है।[३६]

देश में एकछत्र साम्राज्य के अभाव में छोटे-छोटे राज्य थे, परन्तु एक राज्य का व्यक्ति दूसरे राज्य में विदेशी नहीं माना जाता था तथा वे पूरे देश में निर्बाध आवागमन् करते थे। जब कि विदेशियों को देश में प्रवेश करने के लिये अनुमति प्राप्त करनी होती थी। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के अनुसार विदेशियों का सम्पूर्ण परिचय देश की सीमा पर ही पंजिका में लिपिबद्ध कर लिया जाता था।

ऐतिहासिक साक्ष्य राष्ट्रीय भावना की पुष्टि करते हैं। चतुर्थ शताब्दी ई. पू. में सिकन्दर के आक्रमण के समय पश्चिमोत्तर सीमान्त पर विद्यमान अति लघु नगर राज्यों में मालव और क्षुद्रक गणराज्य भी थे। मालव और क्षुद्रकों में दीर्घ काल से प्रबल शत्रुता थी। परन्तु देश के रक्षार्थ विदेशी आक्रान्ता को परास्त करने के लिये मालव-क्षुद्रकों ने आपस में सन्धि कर ली। इस मैत्री सम्बन्ध को प्रगाढ़ बनाने के लिये दोनों गणराज्यों के विवाह योग्य ५० हजार युवक-युवतियों का आपस में विवाह करा दिया गया। इन्ही मालव-क्षुद्रकों से युद्ध करते समय सिकन्दर घायल होकर वापस लौट गया और घायलावस्था में बेबिलोन पहुँच कर उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार **विश्व विजेता सिकन्दर एक अज्ञात मालव-क्षुद्रक वीर योद्धा के द्वारा मारा गया था।** इसी प्रकार महमूद गजनवी के आक्रमण के समय पश्चिमी भारत (सिन्धु क्षेत्र) की महिलाओं ने सैन्य निर्माण हेतु अपने समस्त आभूषण और धनुष की डोरी बनाने के लिये अपने सिर के बाल काट कर दान कर दिये थे। यह दोनों घटनायें विश्व इतिहास में राष्ट्रभक्ति के अप्रतिम् उदाहरण हैं।

विजय नगरम् साम्राज्य की स्थापना के पूर्व दक्षिण भारत की एक घटना भारतीय राष्ट्रवाद का अद्भुत एवं जनसामान्य को उद्वेलित करने वाला उदाहरण है। १३वीं शताब्दी में उत्तर भारत की भाँति दक्षिण भारत भी छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। कांचीपुरम् के राजा अपने राज्य का विस्तार करने के लिये आस-पास के अन्य हिन्दू राज्यों के साथ वारंगल राज्य पर भी आक्रमण करते रहते थे। अचानक एक दिन कांचीपुरम् के राज दरबार में वारंगल का दूत उपस्थित हुआ। दूत अपने साथ कांचीपुरम् के राजा के नाम वारंगल की राजमाता का पत्र एवं सजे हुये थाल में उपहार लाया था।

कांचीपुरम् के राजा ने राजमाता का पत्र पढ़ा और स्तब्ध होकर पूरे राजदरबार को वह पत्र पढ़कर सुनाया। पत्र में लिखा था कि "आप पड़ोसी राज्यों पर आक्रमण करते रहते हैं, जबकि इस समय हमें एकता की आवश्यकता है। बीजापुर और बहमनी के सुल्तान दक्षिण भारत में मुस्लिम साम्राज्य विस्तार के लिये हमारे राज्यों पर बराबर आक्रमण कर रहे हैं। पूरे उत्तर भारत को मुस्लिम आक्रान्ताओं ने रौंद डाला है। आपको वारंगल राज्य चाहिये, मैं आपको वारंगल राज्य तो दे ही रही हूँ साथ में उपहार स्वरूप वांरगल के राजा का कटा हुआ सिर भी भेज रही हूँ।"

कांचीपुरम् के राजा ने दूत से थाल लेकर कपड़ा हटाया - तो उस थाल में वारंगल के राजा (अर्थात वहाँ की राजमाता के बेटे) का कटा हुआ सिर रखा था। समस्त राजदरबार स्तब्ध रह गया। इस घटना के उपरान्त ही महर्षि विद्यारण्य ने दक्षिण के राज्यों को एकात्म कर विजय नगरम् साम्राज्य की स्थापना की और लगभग साढ़े चार सौ वर्षों तक दक्षिण भारत मुस्लिम आक्रमणकारियों से सुरक्षित रहा।

मध्यकाल और अनन्तर महर्षि विद्यारण्य, समर्थ गुरु रामदास, गुरु नानक देव जी, महर्षि दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द प्रभृत सन्तों ने राष्ट्रीय अस्मिता का पुनरुत्थान किया, जिसके परिणाम् स्वरूप हरिहर बुक्का (संस्थापक विजय नगरम् साम्राज्य), राणा सांगा, पूज्य गुरु गोविन्द सिंह, महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी सदृश्य प्रचण्ड देश भक्त एवं उद्भट योद्धा राष्ट्रीय गौरव की रक्षा करने में सफल हुये।

देशभर में बिखरे हुये तीर्थ स्थानों की यात्रा राष्ट्रीय एकता में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करती रही है। इसी कारण आद्य शंकराचार्य ने देश की चतुर्दिशाओं में चार मठ स्थापित किये तथा उत्तरापथ (उत्तर भारत) के मठों में दक्षिण भारतीय एवं दक्षिणापथ (दक्षिण भारत) के मठों में उत्तर भारतीय पुरोहितों की नियुक्ति की। यह परम्परा अद्यावधि विद्यमान है। भारत के चार स्थानों पर आयोजित होने वाले महाकुम्भ राष्ट्रीय एकता में विशिष्ट योगदान प्रदान करते हैं।

व्यावहारिक जीवन में भी राष्ट्रीय भावना को समाहित करने का प्रयास किया गया। हिन्दू धर्म में "संकल्प" प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान का अनिवार्य अंग है। "संकल्प" वाक्य का प्रारम्भ "जम्बूद्वीपे भारत वर्षे—" से होता है। तदुपरान्त क्षेत्र, नगर, तिथि गणना, यजमान एवं उसके पूर्वजों का नाम, कुल-गोत्र इत्यादि का वर्णन है।

इस प्रकार **यह धार्मिक "संकल्प" देश के किसी भी क्षेत्र के निवासी को उसे यह सतत् स्मरण कराता रहता है कि उसका राष्ट्र भारत वर्ष है।** प्रतिदिन प्रातः स्मरणीय मन्त्रों में राष्ट्र की माँ के रूप में वन्दना[३७], समस्त भारत की सात पवित्र पुरियों[३८] सात कुल पर्वतों[३९] और स्नान करते समय (स्नान मन्त्र) देश की सात पवित्र नदियों[४०] के स्मरण से सम्पूर्ण देश का मानचित्र साकार हो उठता है। इसी क्रम में **उत्तर भारत से गंगा जल ले जाकर रामेश्वरम् में जलाभिषेक तथा रामेश्वरम् से बालू लाकर गंगा में डालना राष्ट्रीय एकता का ही प्रतीक है।**

इस राष्ट्रीय एकता एवं सम्पूर्ण भारत वर्ष को एक राष्ट्र, एक भारत-माता के रूप में प्रतिष्ठित करने के लिये अनादिकाल से हमारे पूर्वजों ने अथक अवर्णनीय प्रयास किये हैं। भारत वर्ष पवित्रता-महानता-अध्यात्म की ऐसी प्रतिमूर्ति के रूप में प्रतिबिम्बित होने लगा, कि **देवता भी यहाँ जन्म प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं (अद्यापि देवा इच्छन्ति जन्म भारत भूतले)[४१], परन्तु यह देवगणों के लिये भी दुर्लभ (भारताख्यो महाभाग देवानामपि दुर्लभः)[४२] है।** यही कारण है कि भारत भूमि की प्रशंसा के गीत देवता भी गाते हैं-

गायन्ति देवाः किलगीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते भवन्ति भूयः पुरूषाः सुरत्वात्।।[४३]

सन्दर्भ सूची :

१. ब्रह्म पुराण १९/२५; विष्णु पुराण २/३/२४; शिव महापुराण ५/१८/१९; गरूड़ पुराण, उत्तर खण्ड १/६
२. ब्रह्माण्ड पुराण १/१६/५
३. विष्णु पुराण २/३/१-२६ एवं ब्रह्म पुराण २७/६५-७८, १९/१
४. ऋग्वेद १०/१७३-७४ सूक्त, ७/८४/२, १/१००/१२, ५/३२/११, १०/१५५/५ यजुर्वेद ९/४०, १०/१४, २२/२२, २०/७-१०-१३, ३५/१८ अथर्ववेद ६/५४ सूक्त, १/२९सूक्त, ६/७८/२, १२/१/८, १२/१/१, ४/२३/१, १९/४१/१
५. ऋग्वेद ३/२३/२, ३/५३/१२, ३/५३/२४
६. नित्य नैमित्तिक कर्मसमुच्चयः, पृष्ठ-४, चौखम्भा, विद्याभवन, वाराणसी, १९९२
७. ऋग्वेद १/८९/४, १/१६४/३३, १/१९१/६, ५/४२/१६ यजुर्वेद २/१०, अथर्ववेद १२/१/१२, १२/१/६३
८. ऋग्वेद १०/१२५ सूक्त, अथर्ववेद ४/३० सूक्त
९. ऋग्वेद ५/५९/६, ५/६०/५-८/७/१७
१०. अथर्ववेद ७/६/१-४, १/२९ सूक्त, ३/५ सूक्त, ऋग्वेद १०/८४/२, यजुर्वेद २२/२२
११. यजुर्वेद १०/४०, १०/१४, अथर्ववेद ६/५४ सूक्त; ऋग्वेद ११/१७३ सूक्त
१२. अथर्ववेद ६/७८/२
१३. अथर्ववेद १२/१/८
१४. ऋग्वेद १/१००/१२, ५/३२/११, ७/१५/२; अथर्ववेद ४/२३/१
१५. ऋग्वेद ७/१/४, ७/९/५, ७/४३/५; अथर्ववेद ३/२०/८
१६. ऋग्वेद ७/७६/५, ८/६३/७, ७/८३/४; अथर्ववेद ३/८/५
१७. अथर्ववेद ३/८/१
१८. अथर्ववेद १२/१/४५
१९. ऋग्वेद १०/९०/२
२०. अथर्ववेद १२/१/१५-१६, १२/१/१८, १२/१/२३-२५
२१. ऋग्वेद १०/१९१/२-४; अथर्ववेद ६/६४/१-३
२२. ऋग्वेद १/४६/२, २/४१/१६, ७/३६/६, ३/३३ सूक्त, ६/६१ सूक्त, ३/७/२, ७/९६/५, ७/९५-९६ सूक्त, १०/७५ सूक्त, ३/५४/२०; अथर्ववेद १२/१/४४, १२/१/११; ऋग्वेद ८/३१/१०; यजुर्वेद २६/१५

२३. ऋग्वेद ४/५७ सूक्त, १०/१७३ सूक्त, ७/३५ सूक्त, ३/२३/२, ३/५३/१२ एवं २४, ७/३४/११, १/४२/८-९, २/२३/९, ३/५४/२१, ५/४२/१६, ५/८२/६, १/४२/२, २/२३/१०, ४/१८/१-३, ५/८२/६, ७/६६/१६; यजुर्वेद २५/२१, ३६/२-३, ३६/२४; अथर्ववेद ६/५० सूक्त, ६/८७-८८ सूक्त, १५/८-९ सूक्त, ३/१९ सूक्त; ३/४/२१

२४. ऋग्वेद ५/६६/६, १/५१/९, १/६१/१०, १/८० सूक्त

२५. अथर्ववेद १२/१/१२

२६. यजुर्वेद अध्याय ९ मण्डल २२.

२७. ब्रह्म पुराण १९/१-२७, २७/१-७८, अध्याय २५-२६, ५७, ६३, ७९-१७७, विष्णु पुराण २/३/१-२६; शिव महापुराण ५/१८/१-२१; मत्स्य पुराण ११३/१-५७, अध्याय २२, १०२-११०, १८९-१९४; कूर्म पुराण १/४५/२०-४३; वामन पुराण १३/८-५८, अध्याय १३; वृहन्नारदीय पुराण अध्याय ६; अग्नि पुराण, अध्याय १०९-११६; वायु पुराण अध्याय ७७, १०५/११२; स्कन्द पुराण विविध अध्याय।

२८. वृहन्नारदीय पुराण ३/४९-७४

२९. मारकण्डेय पुराण ५५/२१-२२, ५७/५८-६३

३०. वामन पुराण १३/८-५८; कूर्म पुराण १/४५/२०-४३

३१. गरूड़ पुराण, पूर्वखण्ड ११५/३, ३७; ब्रह्म पुराण २४५/३०, मारकण्डेय पुराण १२४/२७१, १२४/२९

३२. मारकण्डेय पुराण, अध्याय २७

३३. ऋग्वेद ७/१०४/१५, ५/८२/६, ५/७०/४, ७/९४/७

३४. ऋग्वेद ५/६६/६, ७/७३/४, १/८०/१, ३, ७

३५. डॉ. रवीश कुमार, पौराणिक स्रोतों के आधार पर प्राचीन भारत में नृपतन्त्र, पृष्ठ १४८

३६. Nalanda Inscription of Samudragupta, LL.1-2;
Karamadanda Pras'asti of Kumaragupta, L.2

३७. नित्य नैमित्यिक कर्मसमुच्चयः, पृष्ठ-४, चौखम्भा विद्या भवन, वाराणसी १९२२

३८. आयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः।। -नित्य कर्म विधिः, पृष्ठ २६९, चौखम्भा ओरिएण्टालिया, वाराणसी, १९८२

३९. महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः।
विन्द्ध्यश्च परियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः।। -ब्रह्म पुराण १९/३; वामन पुराण १३/१४.

४०. गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेस्मिन संन्निधिं कुरू।। -नित्य कर्म विधि, पृष्ठ ३-४, चौखम्भा ओरिएण्टालिया, वाराणसी, १९८२

४१. वृहन्नारदीय पुराण ३/५२

४२. वृहन्नारदीय पुराण ३/७४

४३. विष्णु पुराण २/२३/२४; शिव महापुराण ५/१८/१९; गरुड़ पुराण, उत्तर खण्ड१/६

असमान बनने की स्वतंत्रता

ओशो

मैं समाजवाद का समर्थक नही हूँ क्योंकि स्वतंत्रता ही मेरे लिए परम मूल्य है। उससे ऊपर कुछ नहीं। और समाजवाद बुनियादी तौर पर स्वतंत्रता के खिलाफ है। उसे होना भी चाहिए, यह अपरिहार्य है क्योंकि समाजवाद की कोशिश किसी अप्राकृतिक चीज को अस्तित्व में लाने की है।

मनुष्य समान नहीं है। वे विशिष्ट हैं। वे समान कैसे हो सकते हैं? सभी कवि और सभी पेंटर नहीं होते। हर व्यक्ति के पास विशिष्ट प्रतिभा होती है। कुछ लोग संगीत का सृजन कर सकते हैं और कुछ लोग धन का। मनुष्य को अपने अनुसार बनने के लिए पूर्ण स्वतंत्रता की जरूरत होती है। समाजवाद राज्य की तानाशाही है। यह जबरन थोपी कई आर्थिक व्यवस्था है। यह उन लोगों को समान बनाने की कोशिश है जो समान नहीं है। जो लोग अलग-अलग आकार के हैं उन्हें वह काँट-छाँटकर एक ही आकार का बनाता है। स्वाभाविक है कि थोड़े लोग ही उस आकार में फिट बैठते हैं। ज्यादातर लोगों के लिए यह पंगु कर देने वाला और विनाशकारी घटनाक्रम होता है।

मैं जीवन के हर क्षेत्र में स्वतंत्रता चाहता हूँ ताकि हर कोई वैसा बन सके जैसा वह बनना चाहता है। समाज साध्य नहीं है केवल साधन है। साध्य है व्यक्ति। समाजिक संगठनों के बजाय व्यक्ति का ज्यादा महत्व है। समाज व्यक्ति के लिए है ना कि व्यक्ति समाज के लिए। इसलिए मैं मुक्त अर्थव्यवस्था में विश्वास करता हूँ। पूँजीवाद सबसे स्वाभाविक आर्थिक संरचना है। वह लादी नहीं गई है वह विकसित हुई है। उसे थोपा नहीं गया है वह अपने आप बनी है। निश्चित ही मैं दुनिया से गरीबी को खत्म करना चाहता हूँ। वह एक भद्दापन है। लेकिन यह काम समाजवाद नहीं कर सकता। वह हर देश में चाहे वह रूस हो या चीन गरीबी का उन्मूलन करने में नाकाम रहा है। हाँ, वह बात में जरूर सफल रहा है। सभी को गरीब बनाने में। उसने गरीबी का वितरण किया है।

और मनुष्य इतना मूर्ख है यदि हर आदमी उतना ही गरीब है जितने की आप तो आप संतुष्ट रहते हैं, आपको ईर्ष्या नहीं होती। समाजवाद का सारा विचार ही ईर्ष्या से जन्मा है। इसका मनुष्य की समझ और उसके मनोविज्ञान, उसके विकास और पूर्ण प्रस्फुटन से कोई लेना-देना नहीं है। कुछ लोग अमीर बन जाते हैं और वे हर किसी की ईर्ष्या का लक्ष्य बन जाते हैं। उन्हें नीचे खींचना है। ऐसा नहीं है कि उन्हें नीचे खींचने से आप अमीर बन जाने वाले हैं। हो सकता है कि आप पहले से ज्यादा गरीब बन जाएँ क्योंकि वे थोड़े लोग जानते हैं कि कैसे धन का सृजन किया जाए और उन्हें खत्म कर दिया गया तो आप सम्पन्नता पैदा करने की क्षमता को खो देंगे। यही रूस में हुआ। अमीर खत्म हो गए लेकिन उससे सारा समाज अमीर नहीं हो गया। सभी समान रूप से गरीब हो गए। लोग पहले से ज्यादा खुश हो गए होंगे क्योंकि उनसे ज्यादा अमीर कोई नहीं है। हर कोई गरीब है, सभी भिखारी हैं। यह अच्छा लगता है। यदि कोई आप से ऊपर उठता है तो आपके अहंकार को ठेस लगती है। लोग समानता की बात करते हैं लेकिन एक बुनियादी बात समझ लेनी चाहिए। मनुष्य मानसिक तौर पर समान नहीं होते। इसके लिए क्या किया जा सकता है? अल्बर्ट आइंस्टीन किसी चंगू-मंगू के समान नहीं है। नहीं हैं वह समान। आप अभी या बाद में प्रतिभा के मामले में बराबर करने की कोशिश कर सकते हैं मगर शेक्सपियर, मिल्टन, शैली दूसरों के समान नहीं है। उनके अपने आयाम हैं।

एक बात पर मैं सहमत हो सकता हूँ - हरेक को स्वतंत्रता हो, स्वयं होने की। बिल्कुल ठीक-ठीक कहूँ तो स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि हर कोई असमान बनने को स्वतंत्र है! समानता और स्वतंत्रता साथ-साथ नहीं चल सकते। यदि आप समानता का चुनाव करते हैं तो स्वतंत्रता की बलि चढ़ानी होगी। और स्वतंत्रता के साथ हर

चीज की बलि चढ़ जाती है। धर्म की बलि चढ़ जाती है। प्रतिभा, प्रतिभा पैदा होने की सारी सम्भावनाओं की बलि चढ़ जाती है। हरेक को लघुतम समाप्रवर्तक में फिट होना पड़ता है तभी आप समान हो सकते हैं। और मेरा मानना है कि हर व्यक्ति अपनी विशिष्ट प्रतिभा और कुछ खास जीनियस लेकर पैदा होता है। वह रवींद्रनाथ और शैली की तरह का कवि नहीं होगा, वह पिकासो या नंदलाल जैसा पेंटर नहीं होगा, वह बीथोवन या रविशंकर जैसा संगीतकार नहीं होगा लेकिन वह कुछ होगा। इस कुछ को खोजा जाना चाहिए। उसकी इस काम में मदद की जानी चाहिए कि वह खोजे कि वह ईश्वर से क्या उपहार लाया है।

कोई उपहार लिए बगैर नहीं आता। हरेक कुछ क्षमता लेकर आता है। लेकिन समानता का विचार खतरनाक है। क्योंकि गुलाब को गुलाब ही होना है और गेंदे को गेंदे का फूल और कमल को कमल का फूल। यदि आप सबको समान बनाने लगे तो आप गुलाब, गेंदा और कमल सभी को नष्ट कर देंगे। आप केवल प्लास्टिक के फूलों को ही इस तरह बना सकते हैं जो एक-दूसरे के समान हों, लेकिन वे निर्जीव होंगे।

यदि समाजवाद हमारी जीवन पद्धति बन गया तो इस दुनिया में क्या होगा - मनुष्य उत्पाद बनकर रह जाएगा। वह मशीन में तब्दील हो जाएगा। मशीनें समान होती हैं। आपके पास लाखों फोर्ड कारें हो सकती हैं जो एक-दूसरे के समान हों। वे असेंबली लाइन से बिल्कुल एक दूसरे के समान बन कर आती हैं। लेकिन मनुष्य मशीन नहीं है और मनुष्य की गरिमा को घटाकर उसे मशीन में बदल देना इस धरती से मनुष्यता को खत्म कर देना है।

समानता का विचार पूरी तरह से अमनोवैज्ञानिक है। मैं उसे केवल एक अर्थ में स्वीकार कर सकता हूँ कि हरेक को स्वयं बनने का जिसका मतलब है असमान बनने का पूरा अवसर दिया जाए। आपको इस विरोधाभास को समझना पड़ेगा। हरेक को अपनी इच्छा के मुताबिक बनने का समान अवसर और स्वतंत्रता दी जाए और इसका सीधे-सीधे मतलब यह है कि हरेक को असमान होने के लिए समान अवसर दिया जाए।

औरत!

भावना सक्सैना

हर खाँचे में
सही बैठने को
छील देती हो
क्यूँ हर बार
ज़रा सा मन
कब समझोगी!
आदर्श
आखिर कुछ भी नहीं होते।
हर बार
हर किसी ने
गढ़ा है उन्हें
अपने लफ़्ज़ों में

अपनी सहूलियत से...
तुम तो उपजी भी
शायद
एक आस को तोड़
जैसे बंजर परती पर
उग आई हो अमरबेल
या कोई पीपल
पत्थरों का सीना चीर।

इस तपती
रेतीली भूमि पर
तुम्हारा होना ही
है नमन योग्य
फिर क्यों शर्मिंदा हो
अपने होने पर
कि बार-बार
खुद को तोड़
अपने टुकड़ों से
भरती हो दरारें,
आँसुओं के
महीन रेशम से
करती हो रफू
जिंदगी के ताने-बाने,
जोड़ते रहने की
फितरत में
ढल गई हो तुम!

दोषी हो!
तुम ही अपनी
कि मौन रहीं सदा
और सहमत रहीं।
गढ़ा जाता रहा तुम्हें
बरसों बरस
उनके अनुसार
उम्मीदों की छैनी से
छीली जाती रही,
चमक की आस में
घिसी जाती रही,
हौसलों की आँच में
तपाई जाती रही।
क्या समझी नहीं
अब तक कितना भी तपो

किसी का कुंदन बन पाना
नहीं है आसान
क्योंकि छिल-छिल कर
अस्थि स्तर तक भी
तुम पाओगी
या तुमसे कहा जाएगा
कि बस ज़रा सा
और होता
तो बेहतर था
तुम कितना ही
छिलो, घिसो या तपो
वो ज़रा सा
कम रह ही जाएगा
जिन मानकों को
रखा गया है
तुम्हारे सामने
उनमें से कोई
नहीं थी संतुष्ट।
ना सीता, ना राधा,
और न ही पार्वती
देवियाँ होकर भी थीं
अभिशप्त ज़रा ज़रा।

सूखने दो आँसुओं को
इनके नमक से
करना है तुम्हें
सत्याग्रह
बाहर आओ
अनंत वर्जनाओं से
कि तुम्हें ही तो
रचनी है सृष्टि
समझाना है
स्वार्थ सिंझी दुनिया को
कि किसी रोज़
दुनिया की सब औरतें
एकजुट हो अगर
बाँध लेंगी अपनी कोख
तो सिमट कर
मिट जाएगा संसार।

शांति और प्रकाश की तलाश

डॉ. अनिल विद्यालंकार

प्रश्न : क्या आपको लगता है कि कभी विज्ञान ईश्वर की सत्ता को सिद्ध कर सकेगा?

टिप्पणी : नहीं। विज्ञान कभी भी ईश्वर की सत्ता सिद्ध नहीं कर सकेगा।

पर क्यों?

क्योंकि ईश्वर विज्ञान के क्षेत्र के बाहर की चीज़ है।

पर अभी तो समाचार मिला था कि वैज्ञानिकों ने ईश्वर-कण (गॉड पार्टिकल) की खोज कर ली है।

क्या वह कण आपकी ईश्वर सम्बंधी सभी जिज्ञासाएँ शान्त कर सकेगा? क्या आप उस कण की पूजा-उपासना कर सकेंगे? क्या आप उसमें अपने जीवन की समस्याओं का अन्तिम समाधान खोज सकेंगे?

तो जो वैज्ञानिकों ने खोजा है वह क्या है?

टिप्पणी : वैज्ञानिक उस कण की तलाश कर रहे थे जिसके कारण सृष्टि में द्रव्यमान सम्भव हो सका। उस कण के बिना सृष्टि की रचना कैसे हुई इसे वैज्ञानिक समझ नहीं पा रहे थे। उस कण की खोज हो जाने से यह सम्भव हो सका है। क्योंकि यह कण सृष्टि के प्रारम्भ को सम्भव बना सकता था इसलिए किसी ने मज़ाक में इसे "गॉड पार्टिकल" कह दिया और यह नाम कुछ ज़्यादा ही प्रचलित हो गया। ईश्वर से इसका किसी भी प्रकार का कोई सम्बंध नहीं है।

पर क्या वैज्ञानिक आज नहीं तो कभी भविष्य में ईश्वर को खोज पाने की आशा नहीं कर सकते?

वैज्ञानिक केवल उन चीज़ों के बारे में अनुसंधान कर सकते हैं जिनकी गणितीय परिभाषा उनके पास है। जिस चीज़ को वे निश्चित रूप से पहचान नहीं सकते उसके बारे में वे अनुसंधान करने का प्रयास भी नहीं करते।

पर मान लीजिए कि वैज्ञानिकों ने ईश्वर को खोज ही निकाला।

कृष्णमूर्ति कहते हैं कि यदि आपको कभी ईश्वर मिल भी गया तो आप उसे पहचानेंगे कैसे? क्या आप किसी ऐसे व्यक्ति को पहचान सकते हैं जिसे आपने कभी देखा नहीं है और जिसका केवल नाम सुना है। यदि वैज्ञानिक कहें कि जो हमने खोजा है वह ईश्वर है तो क्या आप उनकी बात मान लेंगे। आप किस आधार पर उनकी बात का समर्थन या विरोध करेंगे।

पर ईश्वर का कुछ भाव तो हमारे अन्दर है।

आपके अंदर ईश्वर का जो भाव है वह आपको अपने धर्म से मिला है। ईश्वर का भाव अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग है। यदि आप ईसाई हैं तो क्या आप ऐसे ईश्वर को स्वीकार कर लेंगे जिसके दाएँ हाथ की ओर ईसा मसीह न बैठे हों। और मान लीजिए कि आपको ऐसा ईश्वर मिल भी गया तो क्या मुसलमान लोग उसे ईश्वर के रूप में मानने को तैयार हो जाएँगे। वे तो मानते हैं कि ईश्वर को किसी शक्ल में देखा ही नहीं जा सकता। यदि हिन्दुओं के ईश्वर की तलाश आप करेंगे तो आपकी समस्या होगी कि आप उसे राम, कृष्ण, शिव, विष्णु आदि अनेक रूपों में से किस रूप में खोजेंगे।

तो फिर क्या विज्ञान से ईश्वर की खोज के बारे में कोई भी सहायता मिलने की आशा नहीं है?

नहीं, बिलकुल नहीं और कभी नहीं।

इसका कारण? आप अपने कथन में कुछ ज़्यादा ही आग्रही लगते हैं।

जैसे कि अभी कहा है, विज्ञान केवल उन्हीं चीज़ों के बारे में खोज कर सकता है जिनकी गणितीय परिभाषा उसके पास है। उदाहरण के लिए, हम सभी को ठंड और गर्मी का अनुभव होता है। उसके आधार पर वैज्ञानिकों ने ताप के बारे में अनुसंधान करना प्रारम्भ किया। पर सबसे पहले उन्होंने ताप को तापमापी के आधार पर मापकर उसे एक परिभाषा में बाँध दिया। वैज्ञानिकों के लिए ताप का गर्मी की अनुभूति से कोई सम्बंध नहीं है। उनके लिए बर्फ में भी ताप है क्योंकि वे बर्फ के तापमान को मापकर उसे एक संख्या दे सकते हैं। वैज्ञानिक यह नहीं कहता कि आज का दिन बहुत ठंडा है, वह केवल यह कहता है कि इस समय हमारे चारों ओर की हवा का तापमान इतना है। ताप से सम्बंधित संख्याओं को छोड़कर वैज्ञानिक के लिए गर्मी-सर्दी का कोई अर्थ नहीं है।

और यदि किसी चीज़ की गणितीय परिभाषा न बन पाए?

तो वैज्ञानिक उसके बारे में कुछ नहीं कर सकता। आर्थर एडिंगटन ने कहा है कि वैज्ञानिक का वास्ता अपने उपकरणों से मिलनेवाली संख्याओं से ही होता है। उन संख्याओं के पीछे सत्य क्या है यह वह नहीं जानता और न जान सकता है।

तो फिर हमें विज्ञान के द्वारा ईश्वर की खोज की आशा छोड़ देनी चाहिए।

हाँ, सदा के लिए।

पर हम यह आशा करते क्यों हैं?

क्योंकि हम विज्ञान पर आवश्यकता से अधिक निर्भर हो गए हैं। क्योंकि विज्ञान ने हमारी कुछ समस्याओं का समाधान खोज लिया है इसलिए हम मानने लगे हैं कि वह हमारी सभी समस्याओं का समाधान खोज लेगा। ऐसा सोचना अविवेकपूर्ण है।

तो फिर ईश्वर की खोज कहाँ करें?

अपने अंदर। ईश्वर को आप केवल अपने अंदर ही पा सकते हैं और कहीं नहीं।

पर श्रद्धालु लोग तो ईश्वर को पाने के लिए न जाने क्या-क्या प्रयास करते हैं। वे पूजा-उपासना करते हैं, तीर्थयात्रा पर जाते हैं, व्रत, उपवास, रोज़े रखते हैं। क्या यह सब व्यर्थ है?

पूरी तरह नहीं। जहाँ तक ये चीज़ें श्रद्धालुओं को अपने मन को शान्त करने और अपने संकुचित अहंकार से ऊपर उठने में सहायता करती हैं वहाँ तक उनकी सार्थकता है। जब वे बिना समझे केवल यान्त्रिक अनुष्ठानों का रूप ले लेती हैं, तब वे निरर्थक हो जाती हैं।

पर ईश्वर हमारे अंदर है, इसका विश्वास कैसे हो?

आपका अपना विश्वास तो आपको ईश्वर की झलक मिलने से ही होगा, पर प्रारम्भ करने के लिए आप कुछ ऐसे व्यक्तियों के जीवन और वचनों पर दृष्टिपात कर सकते हैं जिनके बारे में लगता है कि उन्होंने ईश्वर का साक्षात्कार किया था। वैदिक ऋषि ने ईश्वर के लिए कहा, "युष्माकम् अन्तरं बभूव।" ईश्वर तुम्हारे बाहर नहीं, वह तुम्हारा अंतरतम, सबसे अंदर का अंश है। कबीर ने कहा मोको कहाँ ढूँढे बन्दे मैं तो तेरे पास में... मैं साँसन की साँस में...

तो जो चीज़ आपका अन्तरतम है, साँसों की साँस है, उसे खोजने के लिए आप विज्ञान का सहारा कैसे ले पाएँगे। विज्ञान तो जो भी चीज़ आपके सामने प्रस्तुत करेगा वह आपसे बाहर ही तो होगी, भले ही वह चीज़ हो जिसे ईश्वर-कण कहा जा रहा है।

वेद और कबीर के अतिरिक्त कोई और?

उपनिषद् पढ़िए, गीता पढ़िए, मध्ययुग के भक्त संतों के वचन पढ़िए। आधुनिक समय में रामकृष्ण, रमण महर्षि की बात सुनिए। जे. कृष्णमूर्ति को पढ़िए, भले ही वे सभी परम्पराओं का खंडन करते हैं। कहीं-कहीं आपको ओशो में भी उस सत्य की झलक मिल जाएगी।

क्या इनके मार्ग पर चलने से ईश्वर मिल जाएगा?

नहीं। ईश्वर तक पहुँचने का कोई मार्ग नहीं है। जो चीज़ आपके अंदर पहले से विद्यमान है उस तक पहुँचने के लिए आप कौन-सा मार्ग अपनाएँगे।

पर मनुष्य वहाँ पहुँचना तो चाहता है। इसीलिए ईश्वर को पाने के लिए इतने प्रयास किए जाते हैं। वास्तव में आपको प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है। एल्डस हक्स्ले ने कहा है कि हमारी यात्रा का अंतिम लक्ष्य वहाँ पहुँचना है जहाँ हम सदा से रहे हैं।

इसका अर्थ क्या हुआ?

यदि हम मानते हैं कि ईश्वर ने इस संसार को बनाया है और संसार के बनने से पहले केवल ईश्वर ही विद्यमान था, तो जो कुछ उसने बनाया है उसमें वह किसी न किसी रूप में विद्यमान होना चाहिए। यानी सभी प्राणियों के जीवन में जीनेवाली चेतना ईश्वर की ही होनी चाहिए। तुलसीदास ने इसलिए कहा है- ईस्वर अंस जीव अबिनासी। हम सभी ईश्वर के ही अंश है। ईश्वर को पाने के लिए हमें कुछ नहीं करना, केवल अपने आपको जानना है।

पर अपने आपको जानने का मतलब क्या हुआ?

यही कि जो आप वास्तव में हैं उस रूप में अपने को जानें। इस समय यदि आपसे कोई पूछे कि आप कौन हैं? तो आप कह सकते हैं, "मेरा नाम यह है, मैं भारतीय हूँ, इस शहर का निवासी हूँ, इस मकान में रहता हूँ, उस दफ्तर में काम करता हूँ, इस स्त्री का पति हूँ, दो बच्चों का पिता हूँ", आदि-आदि। पर आपकी यह सारी पहचान आनुषंगिक है। आप भारत के अलावा कहीं और भी पैदा हो सकते थे, किसी और शहर में रह सकते थे, कहीं और काम कर सकते थे, आपका विवाह किसी और लड़की से हो सकता था, तब आपके बच्चे भी कोई और होते, आदि-आदि। आपका वास्तविक रूप वह है जो इन सब आनुषंगिक बातों के ऊपर है।

उस रूप को जानने के लिए क्या करना होगा?

पतंजलि कहते हैं कि अपने स्वरूप को जानने के लिए हमें अपने मन की हलचल को पूरी तरह शांत करना होगा जो कि योग का उद्देश्य है।

क्या इसका सम्बंध वैज्ञानिकों की खोज से भी है?

अवश्य। हमें सदा याद रखना है कि वैज्ञानिक जिस संसार का अध्ययन कर रहे हैं वे उससे अलग नहीं हैं, उसके अविभाज्य अंग हैं। प्रसिद्ध भौतिकीविद् डेविड बॉम ने कहा है : Ultimately, the entire universe (with all its 'particles', including those constituting human beings, their laboratories, observing instruments, etc.) has to be understood as a single undivided whole, in which analysis into separately and independently existent parts has no fundamental status. (Wholeness and the Implicate Order, p. 221)

पर इस सत्य को हम जान कैसे सकते हैं?

गहरे ध्यान के द्वारा। जब हमारे चित्त की हलचल बिलकुल शान्त हो जाएगी तब संसार का अंतिम सत्य हमारे सामने प्रकट होगा।

तो क्या वैज्ञानिकों को भी ध्यान का अभ्यास करना होगा?

अंतिम सत्य को जानने का और कोई उपाय नहीं है। गैरी ज़ुकाव ने आधुनिक भौतिकी के बारे में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक The Dancing Wu Li Masters (p. 310) में कहा है :

If Bohm's physics, or one similar to it, should become the main thrust of physics in the future, the dances of East and West could blend in exquisite harmony. Physics curricula of the twenty-first century could include classes in meditation.

और हम इक्कीसवीं शताब्दी के पहले दशक के पार आ चुके हैं।

तो इसका प्रारम्भ कहाँ से करना चाहिए?

शिक्षा से। हम वैचारिक स्तर पर जो कुछ भी हैं उसमें हमारे धर्म और हमारी शिक्षा का बहुत बड़ा हाथ है। धर्म भी एक प्रकार की अनौपचारिक शिक्षा है यद्यपि उसके प्रभाव बहुत गहरे पड़ते हैं। शिक्षा में बच्चों को प्राथमिक शिक्षा से ही यह बताया जाना चाहिए कि भाषा में केवल संख्यावाची शब्दों के अर्थ निश्चित होते हैं, अन्य शब्दों के अर्थ हम अपने-अपने अनुभव से लगाते हैं। जिस चीज़ को हम मापकर उसके साथ कोई निश्चित संख्या जोड़ सकते हैं वह विज्ञान के क्षेत्र में आ जाती है। शेष सभी बातें मत के क्षेत्र में रहती हैं। इसलिए बच्चों को ही उदारवादी शिक्षा दी जानी चाहिए। अध्यापक को यह ईमानदारी से कहना चाहिए कि, विज्ञान को छोड़कर, वह जो कुछ भी पढ़ा रहा है वह पाठ्यपुस्तक का या उसका अपना मत है। छात्रों को अपना मत बनाने का न केवल अधिकार होना चाहिए अपितु उसके लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। अन्यथा हमारे मेधावी बच्चे भी तोते बनकर रह जाते हैं, धर्म के क्षेत्र में और जीवन के क्षेत्र में भी।

पर क्या धार्मिक नेता इस बात के लिए तैयार होंगे? वे तो कहते हैं कि उनके पास धर्म का अंतिम सत्य है और उस सत्य को संसार में फैलाना उनका पवित्र कर्तव्य है।

इसीलिए संसार में इतना संघर्ष और खून-खराबा है। यदि तथाकथित धार्मिक नेताओं को बचपन में सही शिक्षा मिली होती तो वे अपने मत को लेकर इतने कट्टर नहीं होते। वे अपने ईश्वर को अपने अंदर पाने के लिए प्रयास करते और अपने अनुयायियों को भी वैसा ही करने के लिए प्रोत्साहित करते।

तब संसार में ज्ञान और शान्ति दोनों साथ-साथ रह सकते। आज हमारे जीवन में न शान्ति है, न प्रकाश।

ओम टॉपरॉय नम:

दिलीप कुमार सिंह

हाल के दिनों में टॉपरों की बहार आयी हुई है, फिर चुनावी मौसम में लोगों को ना चुनाव, ना आईपीएल और ना करन जौहर की फिल्में लुभा पा रही हैं, कलंक फ़िल्म क्या रिलीज हुई कोई कई लोगों का रोजगार पर ग्रहण लग गया, इस वक्त सिर्फ रिपोर्टर की चाँदी है जो वैरायटी खोजते-खोजते हिंदी के टॉपर के पास पहुँच गया। रिपोर्टर ने उसका इंटरव्यू लेना चाहा मगर इंटरव्यू के कारण ही कई टॉपरों के जेल जाने के कारण उसने कैमरे पर बोलने से मना कर दिया। तो फिर रिपोर्टर ने लिखित सवाल किए जिसमें से कुछ के जवाब ऐसे हैं।

रिपोर्टर - टॉपर बन कर आपको कैसा महसूस हो रहा है?

विद्यार्थी - जी बहुत अच्छा महसूस हो रहा है और थोड़ी पीड़ा भी हो रही है, अच्छा ये लग रहा है कि हमने टॉप किया है, और बुरा ये लग रहा है कि मम्मी हमारी सुरक्षा की प्रार्थना करने रोज मन्दिर जाने लगी हैं, वैसे पहले वो सिर्फ सेल्फी लेने के लिए ही पूजा स्थलों पर जाती थीं और पापा एक वकील से मिलने गए हैं कि जेल जाने की नौबत आयी तो खर्चा कितना लगेगा।

रिपोर्टर - लेकिन आपको क्या भय, टॉप करना तो गर्व की बात होती है, आप जेल क्यों जाएँगे?

विद्यार्थी - वो सब हमको पता नहीं जैसे ही हमने टॉप किया वैसे ही हमारे कॉलेज के प्रिंसिपल साहब को फोन आ गया कि अगर किसी रिपोर्टर को इंटरव्यू दिया तो जेल जाने की नौबत आ सकती है, पिछले कई टॉपर इंटरव्यू देने की वजह से जेल चले गए ।

रिपोर्टर - आप किस कॉलेज में पढ़ते हैं, और आपने परीक्षा किस कॉलेज में दी?

विद्यार्थी - जी हम किस कॉलेज में पढ़ते हैं वहाँ सिर्फ पढ़ने के लिए पढ़ते हैं ।

रिपोर्टर - मतलब, कॉलेज पढ़ने के लिए ही होता है फिर सिर्फ पढ़ने के लिये पढ़ने से क्या मतलब है?

विद्यार्थी - जी मेरा मतलब है कि हम फॉर्म गाँव के कॉलेज से भरे थे और असली विद्यार्थी तो उसी कॉलेज के हैं लेकिन वहाँ हम पढ़ने नहीं जाते थे क्योंकि वहाँ ना कोई पढ़ने जाता था और ना कोई पढ़ाने आता था तो हमारे उस कॉलेज के प्रबंधक और प्रिंसिपल ने हमसे कहा, कि रोज रोज कॉलेज आकर क्यों अपना संसाधन और ऊर्जा बर्बाद करते हो, तुम्हारी वजह से हमको भी पढ़ने-पढ़ाने का इंतजाम करना पड़ता है, ये दूरदराज का कॉलेज सिर्फ फॉर्म भरवाने और परीक्षा दिलवाने के लिये मशहूर है, जो साल में प्रवेश और परीक्षा के महीनों में ही सक्रिय रहता है । इसलिये अगर रोज-रोज पढ़ना है तो कहीं और भी नाम लिखवा लो, पढ़ना उस कॉलेज में, परीक्षा इस कॉलेज के नाम से दे देना। सो हमने ऐसा ही किया, साल भर शहर के कॉलेज में पढ़ाई की और परीक्षा गाँव के कॉलेज से दे दी ।

रिपोर्टर - आपको इसमें कुछ अजीब नहीं लगा कि पढाई एक जगह से परीक्षा दूसरी जगह से?

विद्यार्थी - जी हमको बहुत अजीब लगा और हम तो समझ ही नहीं पा रहे हैं कि लोगों को क्या बताएँ कि कहाँ के विद्यार्थी हैं, शहर के या गाँव के, पढ़े कहाँ, परीक्षा कहाँ दें। लेकिन हमारी मम्मी ने हमको समझाया

कि आजकल बड़े-बड़े लोग भी ऐसा करते हैं जैसे कि राहुल गाँधी जी का राजनीतिक कॉलेज अमेठी है और परीक्षा देने वायनाड चले गए, मेरी मम्मी ने कहा कि इतने बड़े नेता होने के बावजूद ज़रूर उन्होंने अपनी मम्मी की बात मानकर ऐसा किया होगा तो मुझे भी अपनी मम्मी की बात मान लेनी चाहिए। सो मैंने भी अपनी मम्मी की बात मान ली।

रिपोर्टर - वो तो ठीक है लेकिन क्रेडिट तो कोई एक कॉलेज ही लेगा। किसी एक को ही तो आप मानेंगे।

विद्यार्थी - जी, किसी एक पर तो ही लफड़ा फँसा हुआ है, पापा कह रहे हैं कि वकील साहब और कुछ लोगों से पूछकर ही दो में से किसी एक कॉलेज का नाम मुझे लेना है ताकि जाँच पड़ताल में उस कॉलेज की कोई बात फ़र्ज़ी निकली तो मुझे जेल जाना पड़ सकता है। उधर मम्मी दोनों कॉलेज के प्रिंसिपल से भी बात कर रही हैं कि जो पूरे साल की मेरी पढाई-लिखाई में जो खर्चा लगा जो भी कॉलेज दे देगा उसी का मुझे नाम लेना है। मम्मी-पापा में इसी बात को लेकर रार चल रही है, देखिये क्या नतीजा निकलता है।

रिपोर्टर - आपने किस कोचिंग/अध्यापक से पढ़ाई की इसमें तो कोई सीक्रेट नहीं है ये तो आप बता ही सकते हैं?

विद्यार्थी - जी मैं इस सवाल का जवाब नहीं दे सकता, मेरी मम्मी ने कहा है कि मेरे विवाह के दहेज की रकम से भी बड़ी ये बिग डील होगी ये सवाल कि मैंने किस कोचिंग /अध्यापक से पढ़ाई की। सभी कोचिंग वाले अपना ब्रोशर और रेट लिस्ट दे गए हैं कि किसका नाम लेने पर कितने पैसे मिलेंगे। मम्मी इन सारे ऑफर्स का तुलनात्मक अध्ययन कर रही हैं, वो मोल भाव करके बतायेंगी कि मुझे किस कोचिंग/अध्यापक का नाम लेना है तभी मैं बोलूँगा। वैसे मोटे तौर पर मैं आपको बता दूँ कि मैने किसी कोचिंग या अध्यापक से लगातार प्राइवेट ट्यूशन नहीं लिया है।

रिपोर्टर - और कुछ ऑफर मिले हैं आपको?

विद्यार्थी - जी बहुत किस्म के ऑफर मिल रहे हैं जैसे कि रामऔतार दूधवाले ने हमारे घर पर आज से ही दूध का भाव दस रुपये कम कर दिया है और हर महीने एक किलो शुद्ध देशी घी देने की पेशकश की है बशर्ते वो अपने तबेले के सामने मेरी फ़ोटो टाँग कर ये प्रचार कर सकें कि उनकी भैंस का दूध पीकर मैं टॉपर बना हूँ, जबकि हाल ही में वो मिलावटी दूध के केस में जमानत पर बाहर आये हैं। लाला छन्नूमल पंसारी ने इस बात का ऑफर दिया है कि वो हर महीने हमें एक किलो बादाम फ्री में देंगे अगर मैं सबके सामने ये कह दूँ कि मेरे टॉपर बनने में उनकी दुकान के बादाम का बड़ा योगदान है। ये और बात है कि परसों ही अफवाह उड़ाकर नमक को सौ रुपये किलो बेचने के आरोप में कोतवाली पहुँच गए थे। मम्मी ने इन सबके ऑफर्स को नोट कर लिया है, अब वही डिसिजन लेंगी।

रिपोर्टर - इसके अलावा भी कोई ऑफर है?

विद्यार्थी - जी कई हैं जैसे कि मोहल्ले की अगरबत्ती बनाने वाली आंटी जो धोनी की फ़ोटो लगाकर अगरबत्ती बेचती थीं मम्मी से सुबह आकर ही कह गई हैं कि अब वो सालों-साल हमें अगरबत्ती मुफ्त देंगी, बस हमें ये कहना होगा कि उनकी ब्रांड की अगरबत्ती से पूजा पाठ करने से प्रार्थना ईश्वर ने स्वीकार कर ली और मैं टॉपर बना। जिस टेम्पों से मैं कॉलेज जाता था वो अंकल भी मम्मी से बात कर रहे हैं कि अब वो मुझे हर जगह टेम्पो में मुफ्त ले जाएँगे और मेरी फ़ोटो स्लोगन के साथ अपने टेम्पो पर लिखेंगे कि -

"टेम्पो हमारा शुभ है ऐसा, जिसे टॉपर भी करें पसन्द

इससे कोचिंग जाओगे तो तेज रहोगे, वरना हो जाओगे मन्द ।"

रिपोर्टर - और कोई विशेष आफर?

विद्यार्थी - जिस साईकल से मैं ट्यूशन जाता था वो अंकल भी आये थे, कह रहे थे कि साइकिल की दुकान पर मेरा फ़ोटो लगाना चाहते हैं कि "टॉपर्स की सवारी, साइकिल है या फेरारी" मम्मी ने उनसे एक फिटनेस वाली साइकिल माँगी है। देखिये सौदा कितने में पटता है।

रिपोर्टर - आप की इस कामयाबी में आपके माता-पिता का कितना सहयोग, आशीर्वाद है, विस्तार से बताएँ?

विद्यार्थी - जी पिता जी का तो कोई खास योगदान नहीं था, दो-चार महीने पर झपड़िया देते थे पढ़ने के नाम पर बस।

रिपोर्टर - तो मम्मी की त्याग-तपस्या का फल है आपका टॉप करना?

विद्यार्थी - जी मम्मी ने तो ऐसा ही बोला था कहने के लिए लेकिन मैं आपको बता दूँ कि मम्मी दिन भर फेसबुक, व्हाट्स एप्प और इंस्टाग्राम पर ही जुटी रहती थीं, दिन रात मोबाइल चलाती थीं वही उनकी दुनिया थी। एक बार तो मम्मी डिप्रेसन में अपनी जीवन को कूड़ा बताकर रोने लगी थीं क्योंकि उनकी पोस्ट पर लाइक कमेंट बहुत कम आये थे तब उन्हें दिल्ली वाली आंटी ने समझाया इस उम्र में ऐसे नेगेटिव झटकों को सहने के लिये तैयार रहना चाहिए, तब वो नार्मल हुईं। वैसे एक बात और थी कि मम्मी दिन भर फ़ोन में उलझी रहीं तो हमें पढ़ने-लिखने का अवसर मिल गया वरना वो दिन भर हमसे ही उलझती रहती थीं, हमेशा चिक-चिक, कलह, कलपना, और पापा को कोसती ही रहती थीं ।

रिपोर्टर - कहाँ हैं आपकी मम्मी और मुझसे भी तो वो इस सवाल जवाब के पैसे तो नहीं माँगेंगी?

विद्यार्थी - जी वो उन कोचिंग वालों से पैसे वसूलने गई हैं जिन्होंने दो-तीन दिन से अखबार में मेरी फ़ोटो अपनी कोचिंग के नाम के साथ बिना मम्मी से पूछे और लिए-दिए लगा ली है, और रहा सवाल आपसे पैसा लेने का तो अब आप निकल लो, वरना आपकी शामत आ जायेगी वो आ ही रही होंगी, क्योंकि आपने अभी हमें फूटी कौड़ी तक नहीं दी है।

रिपोर्टर अपना सामान समेटते हुये पूछ बैठा "बाई द वे क्या करती हैं आपकी मम्मी?"

विद्यार्थी - "जी वो फेसबुक पर एक लघुकथा ग्रुप की एडमिन-इन-चीफ हैं"।

यह सुनते ही रिपोर्टर वहाँ से सर पर पैर रखकर भागा, आपसे वो रिपोर्टर मिला क्या?

हिन्दी को अब राष्ट्रभाषा होना ही है

प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी

राष्ट्रभाषा को समझने से पहले राष्ट्र, देश और जाति शब्दों को समझना असमीचीन न होगा। वस्तुत: 'राष्ट्र' को अँग्रेज़ी शब्द 'नेशन' (Nation) का हिन्दी पर्याय माना जाता है, किंतु इन दोनों शब्दों में कुछ अंतर है। अँग्रेज़ी में 'नेशन' शब्द से अभिप्राय किसी विशेष भूमि-खंड में रहने वाले निवासियों से है जबकि 'राष्ट्र' शब्द विशेष भूमि-खंड, उसमें रहने वाले निवासी और उनकी संस्कृति का बोध कराता है। राजनीतिक दृष्टि से और भौगोलिक रूप से एक विशेष भूमि-खंड को 'देश' की संज्ञा दी जाती है, किंतु इसका सम्बंध मानव समाज से नहीं है। 'जाति' से अभिप्राय उस मानव समुदाय से है जो सामाजिक विकास के क्रम में पहले 'जन' या 'गण' के रूप में गठित होती है। यह गण समाज अर्थात् जन समुदाय आर्थिक आधार पर जुड़ कर एक निश्चित 'जाति' का रूप धारण कर लेता है। इस जाति का अपना प्रदेश और अपनी भाषा होती है। युनान में अनेक गण-राज्य थे जिनमें सामंती व्यवस्था वाली लघु जातियाँ थीं। भारत में भरत, कुरु, पांचाल आदि अनेक गण समाज थे। बौद्ध काल के जनपद या महाजनपद लघु जातियों के ही प्रदेश थे, जिनमें ब्रज, अवध, बुंदेलखंड आदि लघु जातियों वाले अनेक प्रदेश बने जिनकी अपनी-अपनी भाषा है। इन्हीं से हिन्दी भाषी जाति का निर्माण हुआ है। हिन्दी के साथ-साथ मराठी, बंगला, तमिल आदि भाषाएँ बोलने वाली अनेक जातियाँ भी अस्तित्व में आई हैं। कुछ विद्वान जाति का अर्थ 'नेशन' से भी जोड़ते हैं.

राष्ट्र शब्द व्यापक अर्थ लिए हुए है। इसके अंतर्गत देश और जाति दोनों की संकल्पना निहित है। वैदिक काल से ही राष्ट्र शब्द का प्रयोग भूमि, जन और संस्कृति के अंतर्ग्रंथित रूप में चला आ रहा है। दूसरे शब्दों में कहें तो राष्ट्र शब्द में तीन संदर्भों का सम्मिलन होता रहा है - एक, वह भूखंड या भूमि जिसमें मानव समुदाय रहता है, दो, स्वयं मानव समुदाय और तीन, उस मानव समुदाय की संस्कृति। मनुस्मृति (१०/६१,७/७३,९/२५४) में राष्ट्र को ज़िला, मंडल, प्रदेश या राज्य, देश या साम्राज्य के साथ-साथ प्रजा, जनता या अधिवासी के अर्थ में परिभाषित किया गया है। इस प्रकार इसमें भूमि, जन और उनकी संस्कृति सभी कुछ समाहित है। अपनी जन्मभूमि के प्रति अनन्य प्रेम की अभिव्यक्ति से भी 'राष्ट्र' की भावना जन्म लेती है। इसी अभिव्यक्ति को रामायण के रचयिता वाल्मीकि ने राम के मुख से कहलाया है – 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'।

राष्ट्र से राष्ट्रवाद का उदय हुआ जिसे कुछ विद्वान व्यापारिक पूँजीवाद की देन मानते हैं। वस्तुत: राष्ट्रवाद किसी समुदाय की वह आस्था है जिसके अंतर्गत उस समुदाय का इतिहास, उसकी परम्परा, संस्कृति, भाषा और जातीयता आधार के रूप में समाहित होते हैं। यूरोप का नवजागरण और फ्रांस, इटली, ब्रिटेन आदि देशों का राष्ट्रवाद व्यापारिक पूँजीवाद का परिणाम माना जाता है। भारत में राष्ट्रवाद का विकास ब्रिटिश शासन काल में राष्ट्रीयता की भावना पैदा होने से हुआ। राष्ट्रीयता से राष्ट्र में ऐक्य की भावना जन्म लेती है और राष्ट्रीय एकता के लिए आंतरिक सौहार्द्र एवं सद्भावना, राष्ट्र-भक्ति और संगठन की भावना की आवश्यकता होती है।

विश्व में तीन प्रकार के जातीयता वाले राष्ट्र हैं। जापान, ईरान, पोलैंड, रूमानिया आदि देश एकजातीय राष्ट्र हैं। कनाडा, बेल्जियम आदि द्विजातीय राष्ट्र हैं और भारत, ब्रिटेन, अमेरिका, चीन, फ्रांस, जर्मनी आदि अनेक देश बहुजातीय राष्ट्र हैं। हर जाति की अपनी भाषा, अपनी संस्कृति और अपना साहित्य होता है जिनसे राष्ट्रीय संस्कृति का विकास होता है। भारत बहुजातीय राष्ट्र है जिसमें तमिल, कन्नड़, तेलुगू, मलयालम, बांग्ला, उड़िया,

मराठी, गुजराती, पंजाबी, कश्मीरी आदि कई जातियाँ हैं। इनके केंद्र में हिन्दी जाति है जिसके कारण भारत को हिंदुस्तान या हिंदुस्ताँ या हिन्दी कहा जाता है, ब्रिटेन में इंग्लिश जाति की प्रधानता के कारण ही उसे इंग्लैंड भी कहते हैं। इसी संदर्भ में एक महान शायर इकबाल ने अपने कौमी तराना में कहा है – 'हिन्दी हैं हम वतन है हिंदुस्ताँ हमारा।' इस प्रकार बहुजातीय राष्ट्र से अभिप्राय उस देश से है जिसमें अनेक भाषाएँ बोली जाती हैं, अनेक जातियों के लोग रहते हैं और उनमें राष्ट्रीय चेतना होती है। ऐसी चेतना का विकास भारत में हुआ है।

जब कोई भाषा जीवंत, स्वायत्त, मानक, उन्नत और समृद्ध हो कर समूचे राष्ट्र अथवा देश में सार्वजनिक सम्प्रेषण-व्यवस्था और कार्य-व्यापार में प्रयुक्त होने लगती है, बहुभाषी राष्ट्र में अंतर-प्रांतीय मध्यवर्तिनी भाषा के रूप में विभिन्न भाषा-भाषी समुदायों के बीच बृहत्तर स्तर पर सम्पर्क भाषा की भूमिका निभाती है तथा केंद्रीय एवं राज्य सरकारों में सरकारी कार्यों और पत्र-व्यवहार में प्रयुक्त होने लगती है तो वह राष्ट्रभाषा और राजभाषा के रूप में जन्म लेती है। अमेरिकन भाषाविज्ञानी जोशुआ फिशमैन ने राष्ट्रभाषा और राजभाषा के संदर्भ में nationalism (राष्ट्रीयता) और nationism (राष्ट्रता अथवा राष्ट्रिकता) की संकल्पना प्रस्तुत की है। राजभाषा का सम्बंध राष्ट्रिकता (nationism) से रहता है जो राष्ट्र की आर्थिक प्रगति, राजनैतिक एकता और प्रशासनिक प्रयोजनों की पूर्ति के लिए काम करती है। यह सरकारी कामकाज में प्रयुक्त हो कर जनता तथा शासन के बीच सम्पर्क पैदा करती है। राष्ट्रभाषा का सम्बंध राष्ट्रीयता (nationalism) से रहता है, क्योंकि राष्ट्रीयता जातीय प्रमाणिकता एवं राष्ट्रीय चेतना से जुड़ी होती है। राष्ट्रीय चेतना का सम्बंध सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना से होता है। इसका सम्बंध 'भूत' और 'वर्तमान' के साथ होता है तथा महान परम्परा के साथ जुड़ा रहता है। वस्तुत: राष्ट्रभाषा राष्ट्र के समाज और संस्कृति के साथ तादात्म्य स्थापित करती है तथा सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता की भाषा की अभिव्यक्ति के रूप में कार्य करती है। यह भाषा जनता की निजी, सहज और विश्वासमयी भाषा बन जाती है जिसका प्रयोग राष्ट्रपरक कार्यों में चलता रहता है। इसी लिए राष्ट्रभाषा का अपने देश की भाषा होना अनिवार्य है, किंतु राजभाषा के लिए अपने देश की भाषा होना आवश्यक नहीं। देश के बाहर की भाषा राजभाषा तो हो सकती है, किंतु राष्ट्रभाषा नहीं। इस प्रकार राष्ट्रभाषा वही होती है जिसमें राष्ट्रीय प्रवृतियाँ सन्निहित होती हैं, अपने देश की परम्परा के प्रति प्रेम होता है, राष्ट्र की संस्कृति के प्रति लगाव होता है और राष्ट्र की एकता के प्रति भावनाएँ होती हैं। अमेरिका के सुविख्यात विद्वान फर्ग्युसन के मतानुसार देश का भाषा नियोजन करते हुए राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय अस्मिता, आधुनिक समाज, प्रौद्योगिकी और अंतरराष्ट्रीय सम्बंध में से कम-से-कम तीन लक्ष्यों को ध्यान में रखना आवश्यक होता है। ये विशेषताएँ अपने देश की भाषाओं में ही मिल सकती हैं, विदेशी भाषा में नहीं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रभाषा के संदर्भ में यह कहना भी उचित होगा कि जिस भाषा में राष्ट्र-निष्ठा और राष्ट्रीय भावना नहीं होती, वह राष्ट्र भाषा कहलाने की अधिकारी नहीं होती।

प्रश्न उठता है कि हिन्दी में ऐसी कौन-सी विशेषता है जिसके कारण उसे राष्ट्रभाषा माना जा सकता है। साहित्यिक समृद्धि की दृष्टि से हिन्दी का साहित्य श्रेष्ठ है। विश्व के अनेक विद्वानों ने हिन्दी साहित्य की कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक आदि विभिन्न विधाओं की कृतियों का न केवल अनुवाद किया है बल्कि उन पर शोध और आलोचनात्मक कार्य भी किया है। यद्यपि हिन्दी संस्कृत, तमिल, बंगला और अँग्रेज़ी से अधिक समृद्ध नहीं है तो मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु, उड़िया आदि अन्य भारतीय भाषाएँ भी उससे कम नहीं हैं। हिन्दी को भारतीय संविधान में संघ की राजभाषा के पद से सुशोभित किया गया, क्योंकि इसे बोलने और समझने वाले इन सभी भाषाओं से अधिक है। वास्तव में हिन्दी न तो किसी क्षेत्र-विशेष की भाषा है और न ही किसी एक समुदाय की मातृभाषा। वह तो जन-जन की भाषा है, महाजनपद की भाषा है, पूरे राष्ट्र की भाषा है। यद्यपि

समय-समय पर इसके स्वरूप में परिवर्तन होते रहे हैं, किंतु यह अपने मानस में विभिन्न भाषाओं और बोलियों के तत्त्वों को सँजोती रही है। यह एक ऐसी अजस्र प्रवाहिनी गंगा नदी के समान है जो अन्य भाषाओं एवं बोली रूपी नदियों के सम्मिलन से एक विस्तृत, व्यापक और सुंदर स्रोतस्विनी का रूप धारण करती रही है। हिन्दी मात्र एक भाषा नहीं, अपितु हमारी राष्ट्रीयता है। हमारे जातीय गौरव का प्रतीक है और भारत अर्थात हिंदुस्तान की पहचान है। इसने लोकभाषा खड़ीबोली का आधार ले कर और अन्य बोलियों से सिंचित हो कर भाषा का रूप धारण किया और फिर भाषा से भारत की सम्पर्क भाषा बनी और फिर राजभाषा से गौरवान्वित हुई। राजभाषा से राष्ट्र भाषा का स्वरूप ग्रहण कर लिया और फिर अपने बढ़ते हुए विकास की यात्रा में यह राष्ट्रभाषा इतनी गतिशील हो गई है कि विश्व भाषा का स्थान लेने में अग्रसर हो गई। इसी लिए राष्ट्रीयता की भावना से अनुस्यूत राष्ट्रभाषा दो लक्षणों - आंतरिक एकता और बाह्य विशिष्टता से परस्पर गुँथी होती है। समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने की प्रवृति आंतरिक एकता होती है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाह्य रूप में विशिष्टता सिद्ध करने की प्रवृति होती है। बहुभाषी देश और भारत अर्थात हिंदुस्तान की पहचान है। इसने लोकभाषा खड़ीबोली का आधार ले कर और अन्य बोलियों से सिंचित हो कर भाषा का रूप धारण किया और फिर भाषा से भारत की सम्पर्क भाषा बनी और फिर राजभाषा से गौरवान्वित हुई। राजभाषा से राष्ट्र भाषा का स्वरूप ग्रहण कर लिया और फिर अपने बढ़ते हुए विकास की यात्रा में यह राष्ट्रभाषा इतनी गतिशील हो गई है कि विश्व भाषा का स्थान लेने में अग्रसर हो गई। इसी लिए राष्ट्रीयता की भावना से अनुस्यूत राष्ट्रभाषा दो लक्षणों - आंतरिक एकता और बाह्य विशिष्टता से परस्पर गुँथी होती है। समूचे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधने की प्रवृति आंतरिक एकता होती है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर बाह्य रूप में विशिष्टता सिद्ध करने की प्रवृति होती है। बहुभाषी देश में आंतरिक एकता तभी सम्भव है जब मातृभाषा के साथ-साथ एक अन्य भाषा सम्पर्क भाषा (lingua franca) के रूप में उभर कर आए और बाह्य विशिष्टता के लिए यह भी आवश्यक है कि सम्पर्क भाषा के रूप में राजभाषा की पदवी पाने वाली वह भाषा स्वदेशी ही हो। ये दोनों लक्षण हिन्दी को राजभाषा से राष्ट्रभाषा बना देते हैं। इसी कारण हिन्दी को स्वतंत्रता-संग्राम के समय से राष्ट्रभाषा का पद देने के लिए निरंतर प्रयास किए जा रहे हैं।

समूचे देश की सम्पर्क भाषा होने के कारण न केवल हिन्दीभाषी संतों और आचार्यों ने जन-जन के हृदय तक हिन्दी में अपना संदेश पहुँचाने का कार्य किया बल्कि दक्षिण और हिंदीतर-भाषी आचार्यों और संतों का भी विशेष योगदान रहा है। दक्षिण के रामानुज, रामानंद, विट्ठल, वल्लभाचार्य, महाराष्ट्र के नामदेव एवं ज्ञानेश्वर, गुजरात के नरसी मेहता तथा स्वामी दयानंद, असम के शंकर देव, पंजाब के गुरु नानक देव आदि आचार्यों और संतों ने देश में जन-जन तक अपना संदेश पहुँचाने और अपने ज्ञान का प्रसार करने के लिए हिन्दी को अपना माध्यम बनाया। हिन्दी की इस सरलता, सहजता और सर्वदेशिकता के परिप्रेक्ष्य में काका कालेलकर ने कहा था कि 'हिन्दी सिद्धों की भाषा है, संतों की भाषा है और साधारण जन की भाषा है जिसकी सरलता, सुगमता, सुघड़ता और अमरता स्वयं-सिद्ध है। हिन्दी उत्तर से दक्षिण तक जोड़ने वाली सब से बड़ी कड़ी है।' एक विदेशी अनुसंधानकर्ता एच. डी. कोलबुक ने एक सौ वर्ष पूर्व 'एशियाटिक रिसर्च' में लिखा था कि 'जिस भाषा का व्यवहार भारत के प्रत्येक प्रांत के लोग करते हैं जो पढे-लिखे और अनपढ़ दोनों की साधारण बोलचाल की भाषा है और जिसको प्रत्येक गाँव में थोड़े-बहुत लोग समझ लेते हैं, उसी का यथार्थ नाम हिन्दी है।' एक शोध से जानकारी मिली है कि मुग़ल काल से पूर्व भी मुस्लिम राज्यों में शाही फरमानों में हिन्दी का प्रयोग होता था। यद्यपि मुग़ल काल में फारसी राजभाषा हो गई थी किंतु यत्र-तत्र हिन्दी का भी प्रयोग होता था। एक शोधकर्ता बुलाखमैन ने सन् १८७१ में 'कलकत्ता रिव्यू' में लिखा था, 'मुग़ल बादशाहों के शासन काल में ही नहीं, इससे पहले भी सभी सरकारी कागजात हिन्दी में लिखे जाते थे।' स्वतंत्रता-संग्राम के दौरान बंगाल, गुजरात, महाराष्ट्र,

पंजाब, दक्षिण भारत आदि हिंदीतर भाषी राज्यों के नेताओं, राजनेताओं, साहित्यकारों और समाज सुधारकों ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा और राजभाषा बनाने की माँग की। इनमें राजा राममोहन राय, केशव चंद्र सेन, सुभाष चंद्र बोस, स्वामी दयानंद, सरदार वल्लभ पटेल, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय, सुब्रह्मण्यम भारती आदि उल्लेखनीय हैं। सन् १९१० में न्यायमूर्ति शारदा चरण मित्र ने हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अवसर पर प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष पं. मदन मोहन मालवीय को शुभ संदेश भेजते हुए लिखा था 'हिन्दी समस्त आर्यावर्त की भाषा है। यद्यपि मैं बंगाली हूँ तथापि इस वृद्धावस्था में मेरे लिए वह गौरव का दिन होगा जिस दिन सारे भारतवासियों के साथ साधु हिन्दी में वार्तालाप कर सकूँ।' भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के महा नायक गुजराती भाषी महात्मा गाँधी ने स्वतंत्रता की लड़ाई में हिन्दी के महत्व को मानते हुए उसे राष्ट्रभाषा बनाने के लिए हिंदीतर भाषी राज्यों में राष्ट्रभाषा प्रचार समितियों का जाल बिछा दिया।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय राजनेताओं ने हिन्दी की महता को स्वीकार करते हुए संविधान में राजभाषा का दर्जा दे कर उसे गौरवान्वित किया। मुंशी-आयंगर फार्मूले के नाम से विख्यात संविधान का भाग १७ है जिसमें ३४३ से ३५१ तक अनुच्छेद हैं और साथ में संविधान के परिशिष्ट में अष्टम अनुसूची। इस अवसर पर संविधान सभा के अध्यक्ष डॉ राजेंद्र प्रसाद ने बड़ी मार्मिकता से कहा था कि "आज पहली बार हम अपने संविधान में एक भाषा स्वीकार कर रहे हैं जो भारत संघ के प्रशासन की भाषा होगी। हमें समय के अनुसार अपने-आप को ढालना और विकसित करना होगा। हमने अपने देश का राजनैतिक एकीकरण किया है। राजभाषा हिन्दी देश की एकता को कश्मीर से कन्याकुमारी तक अधिक सुदृढ़ बना सकेगी। अँग्रेज़ी की जगह भारतीय भाषा को स्थापित करने से हम निश्चय ही और भी एक-दूसरे के नजदीक आएँगे।"

राजभाषा का उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए हिन्दी को सक्षम माना गया। अत: संविधान के अनुच्छेद ३४३ में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया। व्यापक अर्थ में हिन्दी का संविधानीकरण करना हिन्दी का राष्ट्रीयकरण करना है। इसमें हिन्दी को अखिल भारतीय रूप में देखा गया है जिससे राष्ट्रीय विकास की सम्भावनाओं में वृद्धि होती है। यह केवल प्रशासनिक प्रयोजनों की भाषा नहीं है, बल्कि राष्ट्रभाषा की भूमिका भी निभा रही है। कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने तो उन लोगों की इस बात से कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा बनाना है, इन्कार करते हुए कहा है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना नहीं है, यह तो पहले से ही राष्ट्रभाषा है। यह सांस्कृतिक जागरण और भारतीय एकता का आधार है। यदि राष्ट्र की संकल्पना समूचे भारतवर्ष पर लागू हो जाए तो हिन्दी सामाजिक और भावात्मक एकता के लिए राष्ट्रभाषा का कार्य कर रही है और यदि भारत राष्ट्र को अन्य राष्ट्रों का संघ या समूह माना जाए तो अन्य भारतीय भाषाएँ राष्ट्रभाषा के रूप में कार्य कर रही हैं। वस्तुत: हिन्दी को संघ की राजभाषा घोषित करने का यह अभिप्राय नहीं है कि यह भाषा अन्य भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। इसे राजभाषा का दर्जा देने का कारण इस भाषा को बोलने और समझने वाले लोगों की संख्या देश में सबसे अधिक है। इसका अभिप्राय यह भी नहीं है कि अन्य भारतीय भाषाओं का महत्व कम हो गया। हिन्दी अगर अखिल भारतीय स्तर पर राजभाषा है तो अन्य भारतीय भाषाएँ अपने-अपने राज्य में राजभाषा की भूमिका निभा रही हैं। अत: ये भाषाएँ हिन्दी की सहयोगी भाषा का कार्य कर रही हैं।

संविधान में हिन्दी सम्बंधी भाषायी अनुच्छेदों में अनुच्छेद ३५१ सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपबंध है जिसमें कहा गया है कि "संघ का यह कर्तव्य होगा कि वह हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ाए, उसका विकास करे जिससे वह भारत की सामासिक संस्कृति के सभी तत्वों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सके और उसकी प्रकृति में हस्तक्षेप किए बिना हिंदुस्तानी में और आठवीं अनुसूची में विनिर्दिष्ट भारत की अन्य भाषाओं में प्रयुक्त रूप, शैली और पदों को आत्मसात करते हुए और जहाँ आवश्यक हो वहाँ उसके शब्द-भंडार के लिए मुख्यत: संस्कृत

से गौणत: अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए उसकी समृद्धि सुनिश्चित करे।" इस अनुच्छेद का अभिप्राय है कि संघ की राजभाषा का स्वरूप क्या हो और वह सभी भाषायी वर्गों के लिए कैसे स्वीकार्य हो? हिन्दी को विकसित करने और समृद्ध बनाने की ज़िम्मेदारी संघ सरकार की है। इसका स्वरूप समन्वित और उदार हो। भारत की सभी संस्कृतियाँ मिली-जुली हों, उनमें पूर्ण समन्वय हो, जिससे विभिन्न क्षेत्रीय भाषा-समूह यह अनुभव करें कि राजभाषा के रूप में विकसित भाषा उनकी अपनी भाषा के निकट हैं और इस भाषा के निर्माण में उनका भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिए हिन्दी की परिभाषा सांगोपांग और उदार निर्धारित की गई है। यथा,

१. यह भारत की सामासिक संस्कृति अर्थात मिली-जुली संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बने। दूसरे शब्दों में, किसी एक ही समुदाय की संस्कृति की वाहिका न बने।
२. यह अपनी प्रकृति खोए बिना हिंदुस्तानी और आठवीं अनुसूची में उल्लिखित भाषाओं के रूप, शैली और पदों को आत्मसात करे अर्थात् क्षेत्रीय भाषाएँ राजभाषा हिन्दी का पोषक बने।
३. यदि आवश्यकता पड़ती है तो यह अपने विकास के लिए मुख्य रूप से संस्कृत और गौण रूप से अन्य भाषाओं के शब्द ग्रहण कर सकती है।

यह बहुत ही महत्वपूर्ण है कि हिन्दी भारत की लगभग सभी क्षेत्रीय भाषाओं के शब्द, शैली आदि अपना कर विकसित होगी, अर्थात् उसमें भारतीय भाषाओं का प्रभाव परिलक्षित होगा। वास्तव में सभी भारतीय भाषाओं के प्रभाव से विकसित हिन्दी का स्वरूप कृत्रिम नहीं होगा बल्कि वह सार्वदेशिक रूप ग्रहण करेगा, क्योंकि भाषा समाज की सांस्कृतिक अवधारणाओं और आकांक्षाओं का प्रतीक होती है। इसके अतिरिक्त धर्म-निरपेक्ष होने के कारण हिन्दी का सामासिक संस्कृति की अभिव्यक्ति का माध्यम बनना आवश्यक था। हालाँकि भारतीय संस्कृति अपने-आप में ही सामासिक और मिली-जुली है। भारत की विभिन्न उपसंस्कृतियों के आपस में एक-दूसरे के बहुत निकट होने के कारण उन्हें अलग से पहचानना कुछ कठिन है। तथापि, उनमें पारस्परिक आदान-प्रदान होना आवश्यक है ताकि हिन्दी अपनी समन्वयवादी भूमिका भली-भाँति निभा सके। यह तभी सम्भव होगा जब सभी क्षेत्रों में हिन्दी का व्यापक प्रयोग हो और समूचे देश के राष्ट्रीय जीवन में अधिक व्याप्त हो।

संविधान के अनुच्छेद ३४३ खंड (३) के अधीन राजभाषा अधिनियम, १९६३ को लोकसभा में तत्कालीन गृह मंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री ने १३ अप्रैल, १९६३ को प्रस्तुत किया था। इसका उद्देश्य था कि १५ वर्ष की अवधि (२६ जनवरी, १९६५) के बाद हिन्दी के अलावा अँग्रेज़ी भाषा का प्रयोग जारी रखने के लिए संसद को कानून बनाने का अधिकार दिया जाए। इस विधेयक पर अपना वक्तव्य देते हुए गृह मंत्री ने यह भी कहा कि "हम अँग्रेज़ी कि वर्तमान स्थिति कायम नहीं रख सकते और न ही रहनी चाहिए। कोई राष्ट्रीय औचित्य न हो तब तक अँग्रेज़ी के स्थान पर और देश की अन्य राष्ट्रीय भाषाओं को अपनाने में अनिश्चितता बनाए रखना भी उपयुक्त नहीं है। अनंत काल तक अँग्रेज़ी की वर्तमान स्थिति चलने नहीं दी जा सकती।" काफी लम्बे वाद-विवाद के बाद यह विधेयक पारित हुआ और १० मई, १९६३ को उस पर हस्ताक्षर हुए।

इस प्रकार भारत की बहुभाषिक स्थिति होते हुए भी हिन्दी के प्रयोग की सम्भावनाएँ अधिक थीं, किंतु भारत संघ की यह राजभाषा कार्यालयीन भाषा तक सीमित रह गई है। एक विडम्बना और, न्यायपालिका में और वह भी हिन्दी भाषी राज्यों में इसका प्रयोग आज भी अत्यल्प हो रहा है, उच्चतम न्यायालय में तो बिलकुल ही नहीं। सभी कानूनी औपचारिकताएँ अँग्रेज़ी में पूरी की जाती हैं, जनता तक नहीं जातीं। शिक्षा, विशेषकर पब्लिक स्कूलों में और उच्च शिक्षा में, वाणिज्य-व्यापार, विज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि अनेक क्षेत्रों में अँग्रेज़ी का

वर्चस्व है। वास्तव में संविधान में हिन्दी को राजभाषा का दर्जा देते हुए हमारे भाषा नियोजन में कुछ कमी रह गई, जिसके कारण इसकी सामाजिक-सांस्कृतिक एकता की अवधारणा को प्रशासनिक प्रयोजनों तक सीमित कर दिया गया। दूसरा, शासन तंत्र की सुविधा के लिए अँग्रेज़ी को अनिश्चित काल तक जारी रख देश में द्विभाषिक स्थिति पैदा कर दी गई है। उससे हिन्दी की स्थिति नाज़ुक और जटिल बन गई है। तथापि, हिन्दी अपनी सार्वदेशिक प्रकृति के कारण समूचे भारत की सम्पर्क भाषा की भूमिका निभाएगी और देश की सामासिक संस्कृति को अभिव्यक्त करने के लिए सक्षम होगी।

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश श्री गोपाल राव एकबोटे ने सन् १९८० में A Nation without a National Language के नाम से एक पुस्तिका का प्रकाशन किया। बाद में उन्होंने इस पुस्तिका में और सामग्री जोड़ी और आचार्य खंडेराव कुलकर्णी के सहयोग से इस परिवर्द्धित पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद कर 'राष्ट्रभाषा विहीन राष्ट्र' पुस्तक का प्रकाशन सन् १९८७ में किया। बहुभाषी भारत में हिन्दी को राष्ट्रीय एकात्मकता का निर्माण करने की शक्ति और महत्ता का विवेचन करते हुए कहा कि हिन्दी एक समन्वयवादी और उदार भाषा है। इसके विकास में इसकी अपनी बोलियों, भारतीय भाषाओं और अन्य वैश्विक भाषाओं का विशेष योगदान है। स्वतंत्रता-संग्राम से चली आ रही भावनात्मक पृष्ठभूमि है। एकबोटे जी ने यह भी उल्लेख किया है कि संविधान के अनुछेद ३५१ में इसके स्वरूप का विवेचन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह हिन्दी उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, राजस्थान आदि हिन्दी भाषी क्षेत्रों की भाषा हिन्दी से अलग हो गई है। इसलिए इसे राष्ट्रभाषा का सम्मान मिलना ही चाहिए। भारत का भाषिक भारतीयकरण का स्वावलम्बन और भाषा नीति भारतीय जनता की राष्ट्रीय आकांक्षाओं और राजकीय प्रयोजनों के अनुरूप होना ज़रूरी है। यदि हिन्दी को पूर्ण रूप से राष्ट्रभाषा का सम्मान नहीं मिला तो भारत के विकास और प्रगति की सम्भावना करना व्यर्थ हो जाएगा।

भारत का स्वतंत्रता-संग्राम हमारे संघर्षों का इतिहास है। आज़ादी की लड़ाई में हिन्दी की विशेष भूमिका रही है और इसी लिए महात्मा गाँधी ने कहा था कि राष्ट्र की भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए एक जनभाषा का होना आवश्यक है। यह भूमिका केवल हिन्दी या हिंदुस्तानी ही निभा सकती है। गाँधी जी हिन्दी और हिंदुस्तानी में कोई अंतर नहीं मानते थे। इसीलिए हिन्दी न केवल स्वतंत्रता-सेनानियों की राष्ट्र भाषा थी अपितु समस्त जनता ने अपने समूचे स्वतंत्रता-संग्राम में इसे राष्ट्रभाषा ही माना हुआ था। सच्च मानिए उस काल में हिन्दी ही राष्ट्रभाषा थी। सन् १९०६ से सन् १९४७ तक अर्थात् देश के स्वतंत्र होने तक भारत के हर देशवासी की अभिलाषा थी कि भारत की राष्ट्रीय एकात्माकता के लिए और उसे शक्तिशाली बनाने के लिए एक राष्ट्र-ध्वज, एक राष्ट्रगीत और एक राष्ट्रभाषा का होना नितांत आवश्यक है। इसी संघर्ष, इन्हीं जन-आकांक्षाओं और भावनाओं का सुफल है संविधान का अनुच्छेद ३५१ । इस अनुच्छेद के पीछे अगर इस महत्वपूर्ण पृष्ठभूमि को भुला दिया गया तो इसकी सार्थकता और प्रयोजनीयता समाप्त हो जाएगी। इस प्रकार अनुच्छेद ३५१ से यह आशय निकलता है कि संविधान-निर्माता हिन्दी को मात्र राजभाषा तक सीमित नहीं रखना चाहते थे बल्कि उनका लक्ष्य उसे भविष्य में राष्ट्रभाषा का स्थान दिलाना था, क्योंकि उस समय संविधान सभा के कुछ सदस्य हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने में हिचकिचा रहे थे। इस अनुच्छेद में यह भाव भी निहित है कि हिन्दी के विकास का उद्देश्य न केवल भाषायी दृष्टि से एकात्मकता स्थापित करना है बल्कि सामाजिक-सांस्कृतिक तथा भावनात्मक दृष्टि से भी एकात्मकता स्थापित कर समन्वित संस्कृति का निर्माण भी करना है ताकि हिन्दी को राष्ट्रभाषा का पद मिलने में कोई बाधा न आए। इसके साथ-साथ संविधान की अष्टम अनुसूची

में उल्लिखित २२ भाषाओं को देने का उद्देश्य यह था कि ये भारतीय भाषाएँ अपना विकास करते हुए हिन्दी भाषा के विकास में भी सहयोग देंगी। इसके संकेत अनुच्छेद ३५१ में मिल जाते हैं।

राष्ट्रभाषा से अभिप्राय समूचे राष्ट्र या देश की भाषा से है। वह समूचे देश में बोली और समझी जाती हो और उसका यह स्वरूप सदैव अक्षुण्ण बना रहता है। यह न तो उत्तर की या दक्षिण की भाषा होती है और न ही पूर्व की या पश्चिम की भाषा होती है। यह तो समूचे देश की भाषा होती है। यह मात्र विद्वानों और शोधार्थियों की भाषा तक सीमित न रह कर जन-जन की भाषा होती है। विभिन्न भाषा-भाषियों और समुदायों के बीच का काम करती है और उनमें सौहार्द्र और सद्भावना का सम्बंध बनाए रखती है। समूचे राष्ट्र की सामाजिक-सांस्कृतिक तथा भावनात्मक एकता का निर्माण करती है। इस भाषा की प्रकृति सार्वदेशिकता, सर्वसमावेशिकता, प्राचीन परम्परा, जीवंतता, स्वायत्तता, उदारतावादी दृष्टिकोण, अनेक स्रोतीय शब्द-सम्वर्धन, मानकीकारण, सम्प्रेषणीयता एवं बोधगम्यता आदि विशिष्टताओं के कारण अखिल भारतीय हो गई है। इसकी प्रकृति में बिहारी हिन्दी, पंजाबी हिन्दी, हैदराबादी हिन्दी, मुम्बइया हिन्दी, कोलकतिया हिन्दी आदि अनेक रूप मिलते है। भाषा के ये रूप उसके व्यापक एवं विशाल प्रयोग के द्योतक हैं। वे सभी भारतीयों के लिए बोधगम्य रहेंगे, क्योंकि इन रूपों में उसकी आत्मा एक ही बसती है।

भारत की यह राष्ट्रीय आवश्यकता है कि राष्ट्र की एक राष्ट्रभाषा हो, क्योंकि राष्ट्रभाषा ही देश में राष्ट्रीय चेतना जगा सकती है, राष्ट्रभाषा ही सांस्कृतिक चेतना पैदा कर सकती है, राष्ट्रभाषा ही जन-जन में राष्ट्रवाद की भावना प्रज्वलित कर सकती है। यह भूमिका हिंदी ही निभा सकती है। इसने संविधान की अष्टम अनुसूची में उल्लिखित संस्कृत, बांग्ला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगू आदि सभी भारतीय भाषाओं और अरबी, फारसी, तुर्की, अँग्रेज़ी आदि अनेक विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपना कर और आत्मसात् कर अपना सर्वसमावेशी रूप धारण कर लिया है। इस राष्ट्रभाषा को सभी भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं का भी हिन्दी के साथ आत्मसातीकरण एवं समन्वय हो गया है और यह समृद्ध एवं विकसित भाषा बन गई है। शब्द-भंडार, भाव, रूप और शैली की दृष्टि से यह भाषा अखिल भारतीय हिन्दी हो गई है। यह जनपदीय संदर्भ की भाषा से उठ कर राष्ट्रीय संदर्भ की भाषा बन गई है और वैश्विक संदर्भ की भाषा बनने की ओर पूर्णतया अग्रसर है। इस लिए अब समय आ गया है कि हिन्दी को केवल राजभाषा तक सीमित न रख उसे राष्ट्रभाषा के पद पर गौरवान्वित किया जाए।

शब्दों की सत्ता अनमोल

राजेश बादल

उन्नीस सौ अट्ठाईस। चाद का फाँसी अंक बाज़ार में आया। दो सौ साल की गोरी हुक़ूमत के ज़ुल्मों का दस्तावेज़। रामप्रसाद बिस्मिल, सरदार भगतसिंह और माखनलाल चतुर्वेदी जैसे देशभक्तों ने उसमें लेख और कविताएँ लिखीं थीं। आचार्य चतुरसेन इसके सम्पादक थे। दस हज़ार प्रतियाँ छापीं गईं। जैसे ही छपकर बाज़ार में आया, हड़कंप मच गया। आज़ादी का जुनून एक बार फिर लोगों पर सवार। अँगरेज़ घबरा गए। फाँसी अंक पर बन्दिश लगा दी गई। जहाँ भी मिलता, जला दिया जाता। जिसके पास भी मिलता, उसे जेल में ठूँस दिया जाता। इस अंक की भूमिका में आचार्य चतुरसेन ने लिखा था, "फाँसी अंक को दीवाली की अमावस्या समझिए... दीवाली के इस शुभ दिन पर वीर गम्भीर मृत्यु बाणों से क्रीड़ा करो। जिन्हें साहस हो, वे अभ्यास करें, जिन्हें नहीं, वे देखें। उदीयमान जातियाँ विशेष अवसरों पर विनोद नहीं करतीं, वेदना स्थलों की जाँच किया करती हैं। भारत के विनोद और उल्लास के दिन नहीं, मृत्युवाद का अध्ययन करने के हैं। भारत को निकट भविष्य में उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। हर बहन-भाई को मृत्युंजय की उपाधि प्राप्त करना है। चाँद इस अंक के रूप में उस परीक्षा की प्रथम पुस्तक अपनी बहनों और भाइयों के हाथ में भेंट करता है।" याद दिलाने की ज़रूरत नहीं कि चाँद के इस अंक ने ही बरतानवी सत्ता के ताबूत में आख़िरी कील ठोकी थी और आज इतने साल बाद भी यह शब्द-मशाल हर हिंदुस्तानी के लिए किसी पवित्र धार्मिक ग्रन्थ से कम नहीं है।

एक दूसरा उदाहरण। फाँसी अंक के क़रीब पचास साल बाद। आपातकाल में देश ने देखा पहली बार शब्दों पर पहरा। इंदौर से प्रकाशित नईदुनिया ने सम्पादकीय के स्थान को ख़ाली छोड़कर जो शब्द-सन्देश दिया, वो इतने सालों बाद भी ज़ेहन में ताज़ा है। इस शताब्दी के श्रेष्ठतम सम्पादक राजेन्द्र माथुर ने आपातकाल के बाद मुद्दों की श्रृंखला लिखी तो लोगों ने पहली बार महसूस किया कि उनके दिलो दिमाग़ पर शब्दों की हुक़ूमत कैसे चलती है। इन्हीं मुद्दों से एक अंश, "उन्नीस सौ पचास में जो संविधान हमारे पितामहों ने देश को दिया, वह छप्पर फाड़कर मिला एक वरदान था। यह हमारे पराक्रम से अर्जित अधिकार पत्र नहीं था। यह अनुभव तथा आज़माइश से जन्मी आचार संहिता भी नहीं थी। कई आज़ादियों को हम हवा की तरह स्वाभाविक मानते थे और हवा का महत्त्व तब तक पता नहीं चलता, जब तक कोई नाक बन्द करके हमारी साँस न रोक दे।" ग़ैर ज़िम्मेदार पत्रकारिता के बारे में उन्होंने लिखा, "जीवन से ज़्यादा चरित्र महत्वपूर्ण माना जाता है। ज़िन्दगी क्या है। आदमी मर जाना पसन्द करेगा, लेकिन अपने यश का ख़त्म हो जाना कोई पसन्द नहीं करेगा और कई बार तो यश का मर जाना मर जाने से ज़्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। किसी की यश हत्या इतनी आसानी से आप कैसे कर सकते हैं?"

इसका आशय यही है कि जिस समाज को शब्दों की आज़ादी या बोलने की स्वतन्त्रता नहीं होती, वह एक मुर्दा क़ौम ही होती है। धड़कता हुआ समाज एक सेहतमंद लोकतंत्र का सुबूत है। जिस जम्हूरियत में अपने आपको प्रकट करने का हक़ होता है, वो किसी बाहरी ताक़त की मोहताज़ नहीं होती। उसके अंदर से निकली हुई हर आवाज़ सामूहिक होती है और उसे दबाना मुल्क़ के साथ द्रोह से कम नहीं है। गोरी सत्ता के ख़िलाफ़ शब्द सत्ता ने मोर्चा सँभाला तो उसका अंजाम सबके सामने था। सरदार भगतसिंह को फाँसी इसलिए नहीं चढ़ाया गया था कि वो कोई खूनी क्रांति करना चाहते थे। सचाई तो यही थी कि अँगरेज़ उनके शब्दबज्र से बिखर रहे थे। प्रमाण के तौर पर उस पर्चे की कुछ पंक्तियाँ देखिए जो असेम्बली में फेंका गया था - "बहरों को सुनाने के लिए बहुत ऊँची आवाज़ की आवश्यकता होती है....जन प्रतिनिधियों से हमारा आग्रह है कि वे इस पार्लियामेंट का

पाखंड छोड़कर अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों में लौट जाएँ और जनता को विदेशी दमन और शोषण के खिलाफ क्रांति के लिए तैयार करें....हम अपने विश्वास को दोहराना चाहते हैं कि व्यक्तियों की हत्या करना सरल है, लेकिन विचारों की हत्या नहीं की जा सकती।"

उस दौर के हिंदुस्तान में शब्दों के ज़रिए भगतसिंह कौन-सी क्रांति की अपील कर रहे थे? ज़रा देखिए, "प्रत्येक जाति के भाग्य विधाता युवक ही होते हैं....सच्चा देशभक्त युवक बिना झिझक मौत का आलिंगन करता है, संगीनों के सामने छाती खोलकर डट जाता है, तोप के मुँह पर बैठकर मुस्कुराता है, बेड़ियों की झनकार पर राष्ट्रीय गान गाता है और फाँसी के तख्ते पर हँसते-हँसते चढ़ जाता है। अमेरिकी युवा पैट्रिक हेनरी ने कहा था, जेल की दीवारों के बाहर ज़िंदगी बड़ी महँगी है। पर, जेल की काल कोठरियों की ज़िंदगी और भी महँगी है क्योंकि वहाँ यह स्वतंत्रता संग्राम के मूल्य रूप में चुकाई जाती है। ऐ भारतीय युवक! तू क्यों गफ़लत की नींद में पड़ा बेखबर सो रहा है। उठ! अब मत सो। सोना हो तो अनंत निद्रा की गोद में जाकर सो....धिक्कार है तेरी निर्जीवता पर। तेरे पूर्वज भी नतमस्तक हैं इस नपुंसत्व पर। यदि अब भी तेरे किसी अंग में कुछ हया बाकी हो तो उठकर माँ के दूध की लाज रख, उसके उद्धार का बीड़ा उठा, उसके आँसुओं की एक-एक बूँद की सौगंध ले, उसका बेड़ा पार कर और मुक्त कंठ से बोल - वंदे मातरम!" शब्दों की ललकार क्या देह में हरारत पैदा नहीं करती?

एक बार फिर लौटिए आज़ाद हिंदुस्तान में। आपातकाल से पहले का भारत। ग़रीबी, भुखमरी, भ्रष्टाचार, मँहगाई, काला बाज़ारी और सरकारी दफ्तरों की जड़ता से हर नागरिक बेहाल था। ऐसे में लोगों का आक्रोश अदम गोंडवी के शब्दों से निकला। हमारे राजनीतिक तन्त्र में घुलती सड़ांध पर उन्होंने लिखा - काजू भुने हुए, व्हिस्की गिलास में / उतरा है रामराज्य विधायक निवास में / पक्के समाजवादी हैं तस्कर हों या डकैत / इतना असर है खादी के उजले लिबास में / जनता के सामने एक ही चारा है बग़ावत / ये बात कह रहा हूँ मैं होशोहवास में। और एक जगह उन्होंने लिखा, सौ में सत्तर आदमी जिस मुल्क़ में नाशाद हैं / दिल पे रखकर हाथ कहिए, मुल्क़ क्या आज़ाद है? भ्रष्टाचार पर एक शब्दबाण, हज़ारों रास्ते हैं बड़े साहब की कमाई के / महज़ तनख्वाह से नखरे निपटेंगे क्या लुगाई के / बीवी जी के हाथों में जो बेमौसम खनकते हैं।/ पिछली बाढ़ के तोहफ़े हैं कंगन ये कलाई के / सूखे की नई निशानी उनके ड्राइंग रूम में देखो /टीवी का नया सेट है ऊपर उस तिपाई के।

जब ये कविताएँ मुक्ति प्रकाशन के बैनर तले धरती की सतह पर नाम से छप कर आईं तो आज़ाद भारत में एक बार फिर वही सुलूक़ हुआ। बन्दिश लगा दी गई। लेकिन इन कविताओं का जादू लोगों के सर चढ़ कर बोला। कह सकते हैं कि सेहतमंद लोकतंत्र के लिए समाज की यह शब्द सत्ता हमेशा हुक़ूमत से ऊपर होती है। दुष्यंत कुमार का एक शेर तो अवाम की आवाज़ बन गया था - मत कहो आकाश में कोहरा घना है/ये किसी की व्यक्तिगत आलोचना है / पक्ष औ प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं / बात ये है कि कोई पुल बना है / रक़्त वर्षों से नसों में ख़ौलता है / आप कहते हैं क्षणिक उत्तेजना है।

लेकिन अपनी बात का समापन मैं इन सवालों से करूँगा कि आख़िर आज़ादी ने हमें कोई वादा किया था कि वो आपको अमुक-अमुक चीज़ देगी या हम चाह रहे थे कि हमें चीखने-पुकारने की आज़ादी चाहिए, निर्वाचित प्रतिनिधियों के लिए सदनों को नक़्क़ारख़ाने में बदलने की आज़ादी चाहिए, सोशल मीडिया पर नफरतों के तीर चलाने की आज़ादी चाहिए, अपने शब्दों से समुदायों के बीच ज़हर फैलाने की आज़ादी चाहिए या फिर राजनीतिक व्यंग्यबाणों से घृणा फैलाने की आज़ादी चाहिए? भारत के जिस सामाजिक ढाँचे पर समूची दुनिया ताज़्ज़ुब करती है उसमें हर जाति, धर्म, समुदाय को एक-दूसरे की बहन बेटियों के बहाने गरियाने की आज़ादी चाहिए या फिर देशभक्ति का ठेका लेकर एक-दूसरे पर ज़ुबानी कीचड़ उछालने की आज़ादी चाहिए? माफ़ कीजिए अगर ऐसी आज़ादी चाहिए तो मैं कहूँगा - इससे गूँगा चौपाया होना बेहतर है। मुझे ऐसी शब्दों की सत्ता नहीं चाहिए।

डॉ. स्नेह ठाकुर का रचना संसार

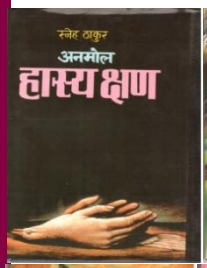

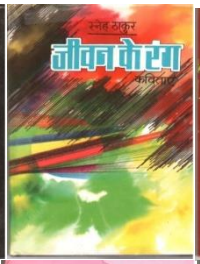

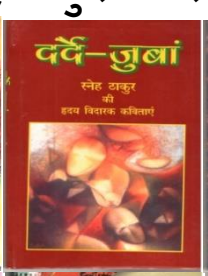

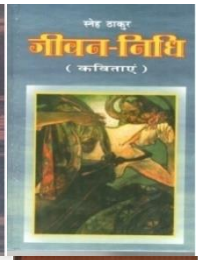

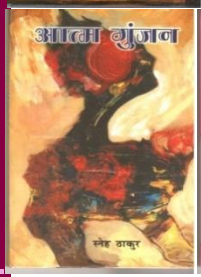

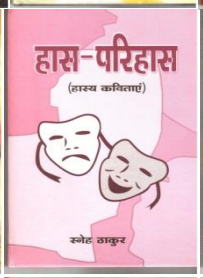

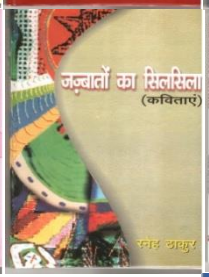

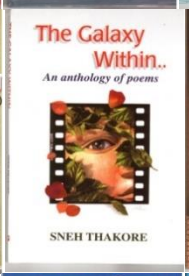

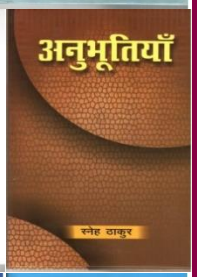

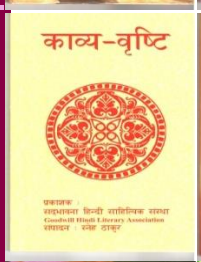

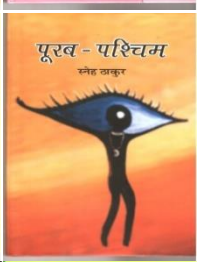

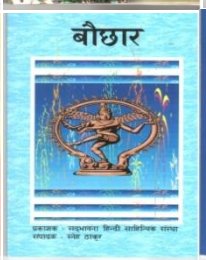

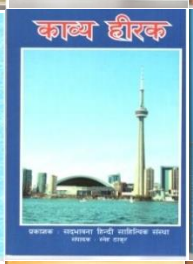

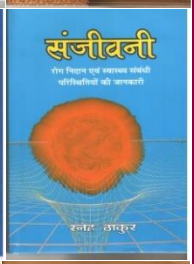

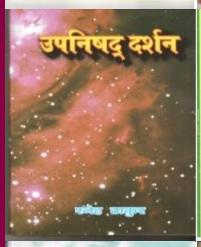

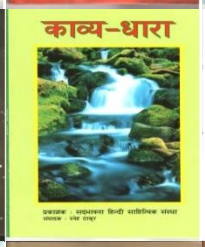

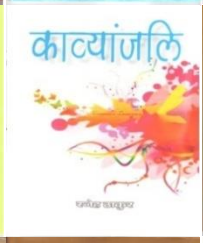

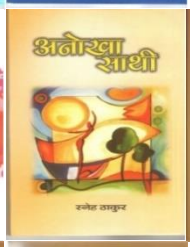

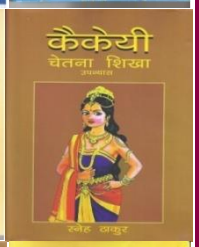

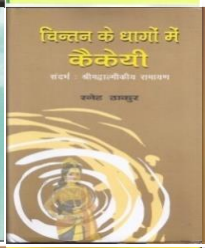

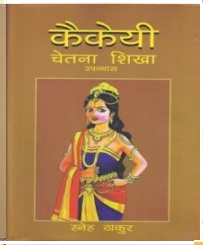

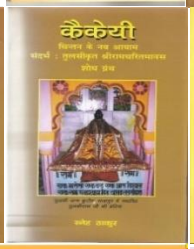

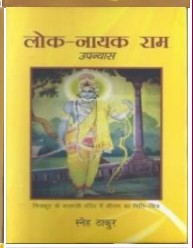

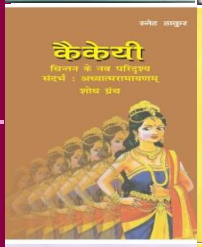

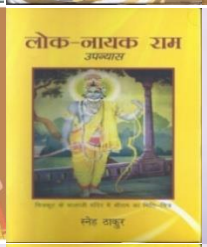

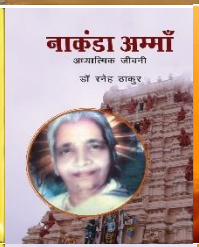

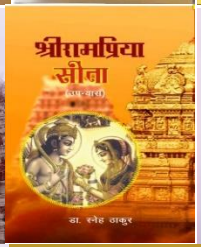

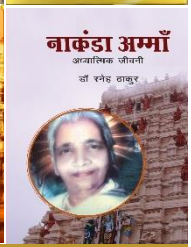

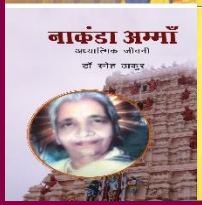

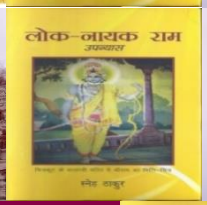

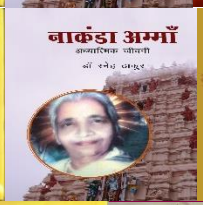

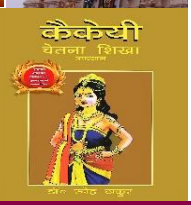

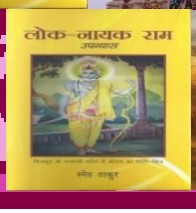

डॉ. स्नेह ठाकुर की प्रकाशित पुस्तकें

दशानन रावण	(उपन्यास)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, चतुर्थ संस्करण)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, चतुर्थ संस्करण)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, तृतीय संस्करण)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी, द्वितीय संस्करण)
श्रीरामप्रिया सीता	(उपन्यास)
नाकंडा अम्माँ	(अध्यात्मिक जीवनी)
लोक-नायक राम	(उपन्यास, द्वितीय संस्करण)
कैकेयी : चिन्तन के नव परिदृश्य - संदर्भ : अध्यात्मरामायण (शोध-ग्रन्थ)	
लोक-नायक राम	(उपन्यास)
कैकेयी : चिन्तन के नव आयाम - संदर्भ : तुलसीकृत श्रीरामचरितमानस (शोध-ग्रन्थ)	
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, साहित्य अकादमी म. प्र. अखिल भारतीय 'वीरसिंह देव' पुरस्कार सम्मान, द्वितीय संस्करण)
चिन्तन के धागों में कैकेयी -	संदर्भ : श्रीमदवाल्मीकीय रामायण (शोध-ग्रन्थ)
आज का समाज	(सामाजिक लेख-संग्रह)
कैकेयी : चेतना-शिखा	(उपन्यास, राष्ट्रपति भवन पुस्तकालय में संग्रहित)
अनोखा साथी	(कहानी-संग्रह)
काव्यांजलि	(काव्य-संग्रह)
काव्य-धारा	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
उपनिषद दर्शन	(ईशोपनिषद, दार्शनिक एवं अध्यात्मिक)
संजीवनी	(स्वास्थ्य सम्बन्धी आलेख)
काव्य हीरक	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
बौछार	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
पूरब-पश्चिम	(आप्रवासी सम्बन्धित आलेख संग्रह)
काव्य-वृष्टि	(संकलन, सम्पादन, सहभागिता एवं प्रकाशन)
अनुभूतियाँ	(काव्य-संग्रह)
The Galaxy Within	(A collection of English poems)
ज़ज़्बातों का सिलसिला	(काव्य-संग्रह)
हास-परिहास	(हास्य कविताएँ)
आत्म-गुंजन	(अध्यात्मिक-दार्शनिक गीत)
जीवन-निधि	(काव्य-संग्रह)
आज का पुरुष	(कहानी-संग्रह)
दर्दे-ज़ुबाँ	(नज़्म व ग़ज़ल संग्रह)
जीवन के रंग	(काव्य-संग्रह)
अनमोल हास्य क्षण	(नाटक-संग्रह, फेडरल गवर्नमेन्ट, कैनेडा द्वारा अधिकतम अनुदान से सम्मानित)

प्रकाशक व वितरक

स्टार पब्लिकेशंज़ (प्रा.) लि.
४/५ बी., आसफ अली रोड
नई दिल्ली - ११०००२, भारत

Star Publishers' Distributors
55, Warren Street
LONDON – W1T 5NW, England

दिल्ली प्रेस की सरिता व अन्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिकाओं में भी रचनाएँ प्रकाशित